ओ३म्

धर्मग्रन्थावलोकन

जन-ज्ञान-प्रकाशन
नई दिल्ली-५

जन-ज्ञान-प्रकाशन का ६१वां पुष्प

॥ ओ३म् ॥

धर्म ग्रन्थावलोकन

संसार के प्रमुख धर्म-मत ग्रंथों
का
प्रामाणिक विवरण

लेखक
प्राध्यापक श्री रत्नचन्द्र शर्मा
एम० ए०, एम० ओ० एल०

जन-ज्ञान-प्रकाशन
नई दिल्ली-५

संपादक की ओर से

संसार में अनेक मत-मतान्तर फैले हैं। उनके अनुयायी अपने-अपने विश्वास के अनुसार किसी-न-किसी ग्रन्थ को ईश्वरीय ज्ञान मानते और उसका प्रचार करते हैं।

यह भी सत्य है कि यह सभी इलहामी ग्रन्थ नहीं हो सकते। कहीं-न-कहीं भ्रम अवश्य है। क्योंकि ईश्वर एक है तो उसका ज्ञान भी एक ही हो सकता है।

ईश्वरीय ज्ञान में किसी भी देश काल व वर्ग विशेष का वर्णन नहीं हो सकता। इतिहास या वीर गाथाओं का भी उसमें होना उसे ईश्वरीय ज्ञान से दूर ले जाता है।

वस्तुतः धर्म का आदि स्रोत ईश्वरीय ज्ञान है और मतों के प्रेरक हैं अन्य तथाकथित ग्रन्थ। इस दृष्टि से संपूर्ण इलहामी कहे जाने वाले ग्रंथों के प्रामाणिक विवरण व संक्षिप्त इतिहास की जानकारी जिज्ञासु जनों को खोज में सहायक सिद्ध हो सकती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ विद्वान लेखक के ५ वर्षों के श्रम और साधना का सार है। इसका उद्देश्य सभी के लिए वह सामग्री प्रस्तुत करना है जिससे सत्य और असत्य का विवेक जागृत हो सके। वस्तुतः लेखक ने ग्रंथ लिखकर धर्म प्रेमी पाठकों की महती सेवा का पुण्य प्राप्त किया है।

हम लेखक के आभारी हैं। माननीय चौ० प्रतापसिंह जी ने पुस्तक के प्रकाशन में उदारतापूर्वक सहयोग दिया। इसके लिए उनका भी धन्यवाद।

प्रभु सभी की मेधा पवित्र करें, जिससे धर्म और मजहब का अन्तर हम समझें और मत-वाद मिटा सभी मनुष्य ईश्वर पुत्र बन धर्म-पथ पर आचरण करें।

२६ जनवरी, १९७१

भारतेन्द्र नाथ

प्रो० रत्नचन्द शर्मा, एम०ए०, एम०ओ०एल०
उपाचार्य
(दयालसिंह कॉलेज, करनाल)

१

विषय-प्रवेश

स्वर्गीय प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने निबन्ध 'What is Culture'? (संस्कृति क्या है ?) में विभिन्न संस्कृतियों के तुलनात्मक और वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता बताते हुए लिखा है—"A person who cannot understand another's view-point is, to that extent, limited in mind and culture, because no body, perhaps, barring some very extra-ordinary human beings, can presume to have the fullest knowledge & wisdom. The other party or other group may also have some inkling or knowledge or wisdom or truth and if we shut our minds to that then we may not only deprive ourselves of it but we cultivate an attitude of mind which, I would say, is opposed to that of a cultured man. The cultured mind, rooted in itself, should have its doors and windows open. It should have the capacity to understand the other's view-point fully even though it cannot always agree with it. The question of agreement or disagreement only arises when you understand a thing. Otherwise, it is blind negation which is not cultured approach to any question." अर्थात् जो व्यक्ति दूसरे के दृष्टिकोण को नहीं समझ सकता वह उस सम्बन्ध में अपने मन और संस्कृति में सीमित होता है. क्योंकि कुछ असाधारण व्यक्तियों को छोड़कर सम्भवतः कोई भी व्यक्ति पूर्ण ज्ञान और बुद्धि से युक्त होने की कल्पना नहीं कर सकता। दूसरा व्यक्ति अथवा वर्ग भी कुछ ज्ञान अथवा बुद्धि अथवा सत्य का संकेत रख सकता है और यदि हम उसके प्रति अपने मन के द्वार बन्द रखते हैं तो हम न केवल

अपने आपको ही उससे वञ्चित रखते हैं वरन् हम अपने मन की एक ऐसी स्थिति बना लेते हैं जो मेरे विचार से एक सुसंस्कृत व्यक्ति के विपरीत है। एक सुसंस्कृत मन के, जो अपने आप में बद्धमूल होता है, द्वार और खिड़कियाँ खुली होनी चाहियें। उसमें यह क्षमता रहनी चाहिये कि वह दूसरों के दृष्टिकोण को समझे, चाहे वह उससे सहमत न हो। किसी बात से सहमत होने या न होने का प्रश्न तब उत्पन्न होता है जब हम उस बात को समझें, अन्यथा यह बिना सोचे-समझे इनकार करना है जिसे किसी भी प्रश्न के विषय में सांस्कृतिक दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता।''

संस्कृति के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये पं० जवाहर लाल नेहरू के ये वचन विभिन्न धर्मों और मतों के तुलनात्मक और वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता पर भी लागू होते हैं। प्राय: यह देखा जाता है कि विभिन्न धर्मों, मतों और सम्प्रदायों के अनुयायी केवल अपने ही धर्मग्रन्थ पढ़ते और सुनते हैं; अन्य धर्मों और मतों के धर्मग्रन्थों के पढ़ने और सुनने को वर्जित समझते हैं जैसे उनके पढ़ने अथवा सुनने से उनके अपने धर्म अथवा मत में बाधा उपस्थित होती हो अथवा धर्महानि होती हो। उनकी ऐसी धारणा उनके दृष्टिकोण को संकुचित तथा अनुदार बना देती है। और कभी-कभी उनकी संकुचित दृष्टि और अनुदारता यहाँ तक बढ़ जाती है कि वे अपने धर्मग्रन्थों में से भी किन्हीं विशेष एक-दो ग्रन्थों को ही अच्छा समझने लगते हैं, उन्हीं को पढ़ते अथवा सुनते हैं तथा दूसरे ग्रन्थों की अवज्ञा करते हैं। उनकी ऐसी प्रवृत्ति उनके लिए कितनी घातक हो सकती है, इसका वे अनुमान भी नहीं लगा सकते। वे कूप-मण्डूक बन जाते हैं और अपने ही धर्म अथवा मत को भी ठीक और पूरी तरह से नहीं समझ सकते, दूसरे धर्मों एवं मतों के विचारों का समझना तो बहुत दूर की बात है। यदि अपने और दूसरों के धर्मग्रन्थों को पढ़ा अथवा सुना ही नहीं जायेगा, यदि उन्हें समझने तथा मनन करने का यत्न ही नहीं किया जायेगा और यदि उनके सिद्धान्तों एवं मान्यताओं की जानकारी ही प्राप्त नहीं की जायेगी तो उनका वैज्ञानिक एवं तुलनात्मक अध्ययन तथा विश्लेषण कैसे किया जा सकेगा? उनके गुणों और दोषों को कैसे आँका जा सकेगा? उनके साथ सहमत होना या न होना अपनी इच्छा पर निर्भर है। परन्तु सहमत होने या न होने का प्रश्न तो तभी उत्पन्न होगा

जब हम उन्हें पढ़ेंगे, उन्हें समझने का यत्न करेंगे और उनका तुलनात्मक विश्लेषण करेंगे ।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि विभिन्न धर्मों, मतों एवं सम्प्रदायों के प्रवर्तकों ने अपने-अपने देश और समय की परिस्थितियों से प्रभावित होकर तथा अपने-अपने देश के और अपने समकालीन समाज के सुधार के लिए अपने नये मत, सम्प्रदाय और विचारधारा को प्रवर्तित किया । प्रत्येक देश और प्रत्येक समाज में ऐसे अनेकों महापुरुष हो चुके हैं और आगे भविष्य में न जाने कितने और उत्पन्न होंगे । किसी भी देश और समाज की तत्कालीन परिस्थितियाँ ऐसे महापुरुषों को जन्म देती हैं । वे उनका सुधार करते हैं, नई विचारधारा देते हैं और कभी-कभी नये मत अथवा सम्प्रदाय का भी प्रवर्तन करते हैं । उनके अनुयायी उन्हें ऋषि, मुनि, अवतार, गुरु, पीर, पैगम्बर आदि नामों से अभिहित करते हुए उनकी पूजा-अर्चना, स्तुति-वन्दना आदि आरम्भ कर देते हैं । उन महापुरुषों का उद्देश्य अपने समकालीन समाज का सुधार करना होता है, अपने पूर्वजों अथवा पूर्व मनीषियों और सिद्धान्तकारों का खण्डन करना नहीं होता । इसके विपरीत वे बहुधा पूर्व मनीषियों के सिद्धान्तों का न केवल अनुकरण ही करते हैं, बल्कि उनके वचनों और सिद्धान्तों को अपने सिद्धान्तों का आधार बनाते हैं । उनके उपदेशों और प्रवचनों में भाव बहुत हद तक पूर्व मनीषियों और आचार्यों का ही रहता है, केवल शब्दों में और भाषा में अन्तर होता है, क्योंकि वे अपने समकालीन समाज के हित और बोध के लिए समकालीन भाषा का प्रयोग करते हैं । दूसरों शब्दों में कहा जा सकता है कि वे पूर्वाचार्यों और मनीषी गुरुओं के वचनों और सिद्धान्तों को ही नये ढंग से और नई भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं एवं परिस्थितियों के अनुसार उनमें यथावश्यक परिवर्तन भी करते हैं तथा उनकी व्याख्याएँ भी करते हैं ।

इसी तथ्य का समर्थन करते हुए स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि "Every prophet is the creation of his times ; created by the past of his race; he himself is the creator of the future" अर्थात् प्रत्येक पैग़म्बर अपने समय की रचना होता है । वह अपनी जाति के भूतकाल द्वारा उत्पन्न होता है और स्वयं भविष्य को उत्पन्न करता है ।" कई बार कुछ मत-प्रवर्तक समकालीन परिस्थितियों और रीति-रिवाजों को ही प्रमुखता

देते हुए पूर्वाचार्यों द्वारा मान्य आध्यात्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों की अवहेलना भी कर देते हैं। ऐसे महापुरुषों द्वारा प्रवर्तित मत अथवा सम्प्रदाय के पुनरुद्धार की आवश्यकता पड़ जाती है और कोई दूसरा महापुरुष उसका पुनरुद्धार करता है अथवा यदि परिस्थिति उसके अनुकूल हो तो वह अपना नया सम्प्रदाय खड़ा कर देता है। उनके वचनों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है और साम्प्रदायिक संकुचित दृष्टिकोण असंगत-सा प्रतीत होने लगता है। अवेस्ता की सूक्तियों पर ऋग्वेद के मन्त्रों का; जैन सूत्रागमों (सूत्तागमे) तथा बौद्ध त्रिपिटकों (तिपिटकों) पर वैदिक सूक्तियों, उपनिषदों, दर्शनशास्त्रों और महाभारत आदि की उक्तियों का; ईसा (क्राईस्ट) के प्रवचनों और उपदेशों पर बौद्ध सिद्धान्तों का; हज़रत ईसा, मूसा और मुहम्मद पर हज़रत ज़रथुस्त के सिद्धान्तों का; हज़रत मुहम्मद के सिद्धान्तों पर हज़रत ईसा और मूसा के वचनों का; शिन्तो मत पर महात्मा बुद्ध और कन्फ़्यूशियस के सिद्धान्तों का; लाओ-त्से के सिद्धान्तों पर भारतीय निवृत्तिवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। वैज्ञानिक ढंग पर किये गये तुलनात्मक अध्ययन से इसे समझा जा सकता है। तुलनात्मक अध्ययन जहाँ अपने धर्मग्रन्थ में आस्था को दृढ़ करेगा वहाँ दूसरों के धर्मग्रन्थों के प्रति सम्मान की भावना को जागृत करेगा।

यह भी एक सर्वमान्य तथ्य है कि सभी प्रमुख धर्मों, मतों एवं सम्प्रदायों का मूल उद्देश्य अथवा जीवन-लक्ष्य एक ही है और वह है 'ईश्वर को पाना अथवा मुक्ति पाना'। स्वर्गादि की कल्पनाएँ सब इसी के परिणाम अथवा ईश्वर-प्राप्ति के फल हैं। सब धर्म तथा सम्प्रदाय ईश्वर-प्राप्ति अथवा मुक्ति-प्राप्ति के उपायों का विधान करते हैं और उनके लिए मन की पवित्रता, ईश्वर प्रार्थना, आचार संहिता तथा प्रायश्चित्त विधान की व्यवस्था करते हैं। दूसरों शब्दों में कहा जा सकता है कि लक्ष्य सबका एक ही है, मार्ग भिन्न-भिन्न हैं। मौलाना अबुलकलाम आज़ाद ने 'तरजमानुल कुरआन' में हज़रत ईसा और कुरआन की शिक्षाओं की तुलना करते हुए कहा है कि "फ़िलहक़ीक़त हज़रत मसीह की तालीम में और कुरआन की तालीम में असलन कोई फ़र्क नहीं है। दोनों का मेआरे अहकाम एक ही है।" यही बात अनेक अन्य मतों के विषय में भी लागू होती है। सभी का लक्ष्य एक ही है। यदि अन्तर है तो आचार संहिता में है और है उपासना पद्धति में। एक अन्तर यह भी है कि कुछ

मतों के प्रवर्तकों ने किन्हीं विशिष्ट कारणों से ईश्वर के साथ तथा अपने मत अथवा सम्प्रदाय के साथ अपने नाम को अनिवार्य रूप से जोड़ दिया है। पश्चिम के मतों को इस सम्बन्ध में उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। पारसी मत में हज़रत ज़रथुस्त ईश्वर का पैग़म्बर है और अवेस्ता ईश्वरीय पुस्तक है। यहूदी हज़रत मूसा को ईश्वर का पैग़म्बर तथा तौरात (तौरेत) को ईश्वरीय पुस्तक मानते हैं। ईसाई हज़रत ईसा को ईश्वर का बेटा कहते हैं और बाईबल को ईश्वरीय पुस्तक समझते हैं। इसलाम के अनुसार हज़रत मुहम्मद ईश्वर का पैग़म्बर हैं और कुरआन ईश्वरीय पुस्तक है। हजरत ईसा ने स्वयं मत नहीं चलाया, परन्तु उनके शिष्यों और अनुयायियों ने उनके नाम पर ईसाई मत चला दिया। पैग़म्बरों और ईश्वरीय पुस्तकों के नाम पर वहाँ अनेक भयानक तथा अत्याचारपूर्ण युद्ध हुए हैं जो उन मतों की संकुचित भावनाओं को तथा धार्मिक असहिष्णुता को व्यक्त करते हैं। भारतीय ऋषियों-मुनियों तथा धर्माचार्यों ने अपने नाम को अमर बनाने का लोभ नहीं दिखाया। गुरु केवल मार्गदर्शक बनकर सहायक बने। वे साधक और साध्य (ईश्वर) के मध्य में खड़े नहीं हुए। इसीलिए भारतीय धर्मों एवं मतों में धार्मिक सहिष्णुता अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है। जब लक्ष्य में कोई अन्तर नहीं है तो साम्प्रदायिक मतभेद और लड़ाई-झगड़े अनुचित और असंगत प्रतीत होते हैं। भारतवर्ष में इस्लाम के आगमन के पश्चात् प्रचलित होने वाले छोटे-छोटे और नये-नये सम्प्रदायों के प्रवर्तको ने अपने अनुयायियों में अवश्य अपने आपको प्रमुख गुरु अथवा ईश्वर का प्रतिनिधि घोषित किया। इनमें से भी कुछ सम्प्रदाय उनके प्रवर्तकों से न चलाये जाकर उनके अनुयायियों द्वारा चलाये गये ; जैसे कबीर पंथ। इनके धर्मग्रन्थों का अध्ययन पूर्वग्रन्थों का प्रभाव सिद्ध करता है।

मौलाना अबुल कलामआज़ाद का **'तरजमानुल कुरआन'** (पृ० १३०-१३५) में कुरआन के आधार पर कहना है कि मजहबों (मतों एवं सम्प्रदायों) का पारस्परिक मतभेद वास्तविक नहीं है, कृत्रिम है। वे कहते हैं "कुरआन कहता है, ख़ुदा के जितने पैग़म्बर हुए हैं, ख्वाह वो किसी ज़माने और किसी गोशा में हुए हों, सबकी राह एक ही थी और सब ख़ुदा के एक ही आलमगीर क़ानूने सआदत की तालीम देने वाले थे। यह आलमगीर क़ानूने सआदत क्या है ? ईमान और अमल सालेह का क़ानून है, यानी एक परवरदिगारे

आलम की प्रस्तिश करनी और नेक-अमली की जिन्दगी बसर करनी। इसके अलावा और इसके खिलाफ़ जो कुछ भी दीन नाम से कहा जाता है, दीन हक़ीक़ी की तालीम नहीं है। ....वह कहता है, दुनिया में कोई बानिये मजाहब भी ऐसा नहीं हुआ है जिसने एक ही दीन पर इकट्ठे रहने और तफ़रक़ाओ इख़्तलाफ़ से बचने की तालीम न दी हो। सबकी तालीम यही थी कि ख़ुदा का दीन बिछड़े हुए इन्सानों को जमा कर देने के लिए है, अलग-अलग कर देने के लिए नहीं है.........चुनांचे वह कहता है, ख़ुदा के जितने रसूल पैदा हुए सबकी तालीम यही थी कि अल्लाह दीन पर यानी बनी नोअ इन्सानी के एक ही आलमगीर दीन पर क़ायम रहो, और इस राह में एक-दूसरे से अलग-अलग न हो जाओ। ....इसी बिना पर वो तमाम मज़ाहबे आलम की बाहमदगर तसदीक़ को भी बतौर एक दलील के पेश करता है, यानी वो कहता है, इनमें से हर तालीम दूसरी तालीम की तसदीक करती है, झुठलाती नहीं। तो इससे मालूम हुआ, इन तमाम तालीमात के अन्दर कोई एक ही साबित व क़ायम हक़ीक़त ज़रूर काम कर रही है। "कुरआन कहता है, मज़हब का इख़्तलाफ़ दो तरह का है। एक इख़्तलाफ़ तो वह है जो पैरवाने मज़ाहब ने मज़हब की हक़ीक़ी तालीम से मुन्हरफ़ होकर पैदा कर लिया है। वह इख़्तलाफ़ मज़ाहब का इख़्तलाफ़ नहीं है, बल्कि पैरवाने मज़ाहब की गुमराही का नतीजा है। दूसरा इख़्तलाफ़ वह है जो फ़िलहक़ीक़त मज़ाहब के अहकाम व ऐमाल में पाया जाता है। मसलन् एक मज़हब में इबादत की कोई खास शक़ल अख़्तियार की गई है और दूसरी में दूसरी शक़ल। तो यह इख़्तलाफ़ असल व हक़ीक़त का इख़्तलाफ़ नहीं है। महज़ फ़रूअ व ज़वाहर का इख़्तलाफ़ है, और ज़रूरी था कि ज़हूर में आता। वह कहता है, मज़ाहब की तालीम दो किस्म की बातों से मुरक्कब है। एक किसम तो वह जो उनकी रूह व हक़ीक़त है। दूसरी वह है जिससे उनकी ज़ाहिरी शक़ल व सूरत आरास्ता की गई है। पहली चीज़ असल है, दूसरी फरअ है। पहली चीज़ को वह 'दीन' से ताबीर करता है, दूसरी को 'शरअ' और 'नसक' से, और इसके लिए 'मिनहाज' का लफ़्ज़ भी इस्तेमाल किया गया है। 'शरअ' और 'मिनहाज' के मानी राह के हैं और नसक' से मक़सूद इबादत का तौर-तरीक़ा है। वह कहता है, मज़ाहब में जिस कदर भी इख़्तलाफ़, उनका असली इख़्तलाफ़ है, वह 'दीन' का इख़्तलाफ़ नहीं है।

महज़ शरअ व मिनहाज का इख़्तलाफ़ है। यानी असल का नहीं, फरअ का है; हक़ीक़त का नहीं है, ज़वाहिर का है; रूह का नहीं है, सूरत का है। और ज़रूरी था कि यह इख़्तलाफ़ ज़हूर में आता। मज़ाहब का मक़सूद इन्सानी ज़मीअत की सआदत व इस्लाह है। लेकिन इन्सानी ज़मीअत के अहवालोज़रूफ़ हर अहद और हर मुल्क में यकसाँ नहीं रहे हैं और न यकसाँ रह सकते हैं। किसी ज़माने की मआश्रती और ज़ेहनी इस्तेअदाद एक खास तरह की नौइअत रखती, किसी ज़माने में एक खास तरह की। किसी मुल्क के हालात एक खास तरह की माशियत चाहते हैं, किसी दूसरे मुल्क के दूसरी तरह। पस जिस मज़ाहब का ज़हूर जैसे ज़माने में और जैसी इस्तअदाद व तबीयत के लोगों में हुआ, उसी के मुताबिक़ शरअ व मिनहाज की सूरत भी अख़्तियार की गई। जिस अहद और जिस मुल्क़ में जो सूरत अख़्तियार की गई, वही उस अहद और उस मुल्क़ के लिए मौज़ूँ थी। इसलिए हर सूरत अपनी जगह बेहतर और हक़ है। कुरआन कहता है—"**ऐ पैग़म्बर ! हमने हर गिरोह के लिए इबादत का एक ख़ास तौर-तरीक़ा ठहरा दिया है जिस पर वह अमल करता है। पस लोगों को चाहिये, इस मुआमला में झगड़ा न करें। (कुरआन ६६/२२)**"। इस प्रकार मौलाना आज़ाद के अनुसार धर्मों एवं मतों में परस्पर भेद मुख्यतयां उपासना-पद्धति विषयक है जो कि कृत्रिम और इसलिए त्याज्य है। अन्य धर्मों एवं मतों के प्रवर्तकों तथा आचार्यों ने भी दूसरे मतों के प्रति विरोध-भावना का समर्थन नहीं किया। "**अरे इन दोउन राह न पाई**" कहकर महात्मा कबीरदास ने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को ही बाह्याचार विषयक मतभेद दूर करने का परामर्श दिया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने तो इन सबसे एक कदम आगे बढ़ाते हुए कहा है कि चाहे कोई जिस किसी विधि से भी उपासना करे वह सब ईश्वर को पहुँचती है। हाँ, वह पूर्ण श्रद्धा से युक्त होनी चाहिये और दूसरों के प्रति विद्वेष की भावना से रहित होनी चाहिये। ईश्वर के प्रति पूर्ण श्रद्धा से युक्त होने पर वह स्वतः विद्वेष-रहित हो जाती है। उनका कहना है—

> **"यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।**
> **तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥**
> **स तया श्रद्धाया युक्तस्तस्याराधनमीहते।**

लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान् ॥"

(गीता ७/२१-२२)

अर्थात् "जो-जो (साधक) जिस-जिस शरीर को श्रद्धा से पूजना चाहता है उस उसकी उसी श्रद्धा को मैं अचल बना देता हूँ। फिर उस श्रद्धा से युक्त होकर वह उसकी आराधना करता है और उससे उन कामनाओं को प्राप्त करता है जो मेरे द्वारा ही उसके लिए रची जाती हैं।" धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय और तुलनात्मक अध्ययन मनुष्य को उदार बनाकर उसे दूसरों की उपासना-पद्धति तथा आचार-संहिता के प्रति सहिष्णु बना देता है। वह समझ जाता है कि उपासना-पद्धतियाँ केवल ईश्वर प्राप्ति केविभिन्न मार्ग हैं। सत्यस्वरूप ईश्वर एक ही है। इस तथ्य को सूर्य के उदारण से समझाते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—"Suppose twenty thousand photographs were to be taken of the same sun, all from different stand points ; these twenty thousand photographs will all certainly differ from one an other. But can you deny that each is a photograph of the same sum ? So all forms of religion, high or low, are just different stages in the journey towards that eternal state of light, which is God Himself. Some embody a lower view, some a higher, and that is all the difference" अर्थात् कल्पना कीजिये कि विभिन्न दृष्टिकोणों से सूर्य के एक हज़ार फ़ोटो लेने हैं। निश्चय ही ये एक हज़ार फ़ाटो एक दूसरे से भिन्न होंगे। परन्तु क्या तुम इस वात से इनकार कर सकते हो कि वे सब उसी सूर्य के फ़ोटो नहीं हैं। इसी प्रकार धर्म के ऊँच नीच सभी भेद शास्त प्रकाश के, जिसे ईश्वर कहते हैं, विभिन्न स्तर हैं। किसी का दृष्टिकोण निम्न है और किसी का उच्च। बस यही अन्तर है।

कट्टर साम्प्रदायिकतावादी साधारणतया अपने-अपने धर्म अथवा मत के बाह्याचारों और रीति-रिवाजों को ही धर्म अथवा महज़ब समझते हैं। परन्तु उनकी ऐसी धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। धर्म कोरा बाह्याचार नहीं है। उसका सम्बन्ध आचार-व्यवहार, आध्यात्मिक और मानसिक अभ्युन्नति तथा श्रेष्ठ मानवीय गुणों से है। "सो हिन्दू सो मुसलमान, जिसका दुरुस रहे ईमान"

कहकर महात्मा कबीरदास ने इसी तथ्य की ओर संकेत किया है। महाभारत-कार महर्षि वेदव्यास के अनुसार धर्म मानवीय जीवन का आधार है। उनका कहना है—**"धारणाद्धर्ममित्याहुः, धर्मो धारयते प्रजाः"**। धर्म शब्द का व्युत्पत्तिनिमित्तिक अर्थ भी इसी बात की पुष्टि करता है—**"ध्रियते लोकोऽनेन धरति लोक वेति धर्मः"** अर्थात् जिसके द्वारा संसार धारण किया हुआ है वह धर्म है। महाराज मनु ने आचार को धर्म का मुख्य तत्त्व स्वीकार करते हुए **"आचारप्रभवो धर्मः"** कहा है। **"यतोऽभ्युदयनिश्श्रेयससिद्धिः स धर्मः"** कह कर महर्षि कणाद ने धर्म को सांसारिक उन्नति तथा निश्श्रेयस का हेतु माना है और **"चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः"** कहकर महर्षि जैमिनी ने उसे शुभ कर्मों तथा जीवन का प्रेरक स्वीकार किया है। मनु और वेदव्यास दोनों ने क्रमशः मनुस्मृति तथा महाभारत में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, दम, धृति, धी (बुद्धि) विद्या और अक्रोध को धर्म के दस अंग अथवा तत्त्व बताया है। ये तत्त्व मानवजीवन की यथार्थता और सफलता के लिए अनिवार्य हैं। ये किसी विशेष सम्प्रदाय अथवा धर्म अथवा मत के न होकर मानव धर्म अथवा विश्व धर्म के हैं, क्योंकि इनमें आचार-विषयक उच्चतम सिद्धान्तों का समावेश है। इसलिए कहा जा सकता है कि धर्म केवल रीति-रिवाजों और बाह्याचारों तक सीमित नहीं होता। वह मानसिक, आध्यात्मिक और आचारात्मक उन्नति का भी हेतु है। इस बात को भी धर्मग्रन्थों के स्वाध्याय तथा तुलनात्मक अध्ययन से ही समझा जा सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक **'धर्मग्रन्थावलोकन'** इसी दिशा में किया गया प्रयास है,परन्तु इसका उद्देश्य न तो विभिन्न धर्मों एवं मतों की परस्पर तुलना करना है और न ही गुण-दोष-प्रतिपादक खण्डन-मण्डन करना। इसमें उनका विस्तृत अध्ययन और विश्लेषण भी प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसका उद्देश्य वैदिक सनातन, पारसी, यहूदी, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मों एव मतों के प्रमुख धर्मग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय देना है ताकि उस-उस धर्म अथवा मत के अनुयायियों को तथा दूसरे धर्मों एवं मतों के अनुयायियों को भी उनका गंभीर अध्ययन करने की प्रेरणा प्राप्त हो और वे स्वयं उन्हें पढ़कर उनका तुलनात्मक और वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करें। इसमें केवल उन्हीं धर्मग्रन्थों का परिचय दिया गया है जिन्हें ईश्वरीय (इलहामी) पुस्तकें कहा जाता है अथवा जो धर्मों एव मतों की सबसे प्रमुख धर्म-पुस्तकें हैं, जैसे वेद, अवेस्ता, तौरात

(तौरेत), सुत्तागमे, तिपिटिक, बाईबल, कुरआन आदि। इन पुस्तकों का क्रम वही रखा गया है जिस क्रम से धर्मों अथवा मतों का संसार में आरम्भ हुआ है। इसके अतिरिक्त इस परिचयात्मक अध्ययन के लिए अपेक्षित सामग्री सम्बन्धित ग्रन्थों से, उन ग्रन्थों के विशेषज्ञों तथा सम्बन्धित धर्माचार्यों की रचनाओं से ग्रहण की गई है। प्रत्येक पुस्तक का परिचय देते समय सर्वप्रथम उस धर्म अथवा मत के प्रवर्तक का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। तदनन्तर उपलब्ध सामग्री के आधार पर पुस्तक का परिचय दिया गया है और अन्त में पुस्तक में प्रतिपादित सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

जहाँ तक वैदिक सनातन धर्म अथवा हिन्दू धर्म का सम्बन्ध है, निवेदन है कि उसके अनेक धर्मग्रन्थों में से केवल वेदों को ही इस पुस्तक में स्थान दिया गया है, क्योंकि हिन्दू वेदों को ही सर्वोत्कृष्ट और ईश्वरीय पुस्तक मानते हैं। यह ठीक है कि अधिकांश हिन्दू गीता, रामायण, महाभारत आदि पुस्तकों का अध्ययन करते हैं। हम उनसे यह नम्र निवेदन करना चाहते हैं कि गीता, रामायण आदि के अध्ययन के साथ-साथ उन्हें वेदों का भी स्वाध्याय करना चाहिये, क्योंकि इन सब धर्म पुस्तकों के मूल आधार वेद ही हैं। **"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"** कहकर महाराज मनु ने वेदों को ही समस्त धर्म का मूल आधार माना है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों को सभी सद्विद्याओं की पुस्तकें माना है। प्राचीन ऋषियों-मुनियों ने एवं मध्यकालीन धर्माचार्यों ने वेदों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और उनके अध्ययनाध्यापन को सबसे श्रेष्ठ धार्मिक कृत्य बताया है। आधुनिक युग में भी जैसे-जैसे वेदों के अध्ययन की अभिरुचि बढ़ती जाती है वैसे-वैसे भारतीय और पाश्चात्य विद्वान् मुक्तकण्ठ से यह कहने लग गये हैं कि वेदों में प्रतिपादित ज्ञान सर्वांगीण और सर्वतोमुखी है, वह अनेक अन्य धर्मग्रन्थों के ज्ञान के समान एकांगी नहीं है। वह आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक सभी प्रकार का है। वेद की शिक्षाएँ मानव-जीवन की सर्वांगीण उन्नति में सहायक हो सकती हैं। इसलिए गीता, रामायण आदि के अध्ययन के साथ-साथ वेदों और उपनिषदों के स्वाध्याय को भी अपना पवित्र धार्मिक कृत्य मानना चाहिये और उसे प्राथमिकता देनी चाहिए। ऐसा करने पर ही वे वेदों के रहस्य को, ऋत और सत्य को समझ सकेंगे।

वैदिक सनातन धर्म

वैदिक सनातन धर्म संसार में सबसे प्राचीन धर्म है जिसकी उत्पत्ति पृथ्वी और मानव की उत्पत्ति के साथ ही मानी जाती है। संसार में अन्य कोई भी धर्म अथवा मत इतना प्राचीन नहीं है। वेद मूलक होने से इसे वैदिक धर्म कहते हैं और प्राचीनतम तथा शाश्वत होने के कारण इसे सनातन धर्म कहा जाता है। इसी को आर्य धर्म अथवा हिन्दू धर्म भी कहा जाता है। 'आर्य' शब्द का अर्थ है 'श्रेष्ठ' और 'हिन्दू' शब्द का अर्थ है **'प्रत्यक्षत: या परोक्षत: वेदोक्त विचारों के आधार पर बने धर्म, आचार-व्यवहार, रीति-नीति, समाज-व्यवस्था आदि में विश्वास रखने वाला और उन पर आचरण करने वाला।'**[1]

'सूर्यसिद्धान्त' आदि ज्योतिष-ग्रन्थों तथा भारतीय पञ्चांगों के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति आज से १९५५८८५०७० वर्ष पूर्व हुई।[2] प्रतिदिन सन्ध्या के संकल्प में सनातन धर्मी यही सृष्टि संवत् बोलते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार यही संवत् वेदों के आविर्भाव का संवत् है। यूरोपीय विद्वानों ने एवं उनके अनुयायी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय विद्वानों ने वेद के उत्पत्तिकाल के विषय में विभिन्न मत प्रस्तुत किये हैं। उदाहरणार्थ जैसे—

१. मैक्समूलर	८०० पू० ई० से १,५०० पू० ई०
२. मैकडानल	१,२०० पू० ई० से २,००० पू० ई०

---

१. बृहत् हिन्दी कोश।

२. स्वामी दयानन्द सरस्वती ने **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** (वि० सं० १९३३) में सृष्टि एवं वेदों की उत्पत्ति १९६०८५८९७६ वर्ष लिखी है। तदनुसार सृष्टि की उत्पत्ति आज से १९६०८५८९७६ वर्ष पूर्व हुई। पं० लेखराम और बाबू निहालसिंह ने इस पर टिप्पणी देते हुए लिखा है कि इस गणना में कहीं भूल हो गई है। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि संवत् (वि० सं० १९३३ में) १९५५८८४९७६ होना चाहिए।

३. हेग	१,४०० पू० ई० से २,००० पू० ई०
४. ह्विटने	१,५०० पू० ई० से २,००० पू० ई०
५. विलसन	१,५०० पू० ई० से २,००० पू० ई०
६. ग्रिफ़्फ़्थ	१,५०० पू० ई० से २,००० पू० ई०
७. बैन्फ़ी	१,५०० पू० ई० से २,००० पू० ई०
८. वैबर	१,६०० पू० ई०
९. जैकोबी	१,५०० पू० ई० से ४,००० पू० ई०
१०. डॉ० आर० जी० भण्डारकर	२,५०० पू० ई०
११. डॉ० राधा कुमुद मुकुर्जी	२,५०० पू० ई०
१२. डॉ० ए० डी० पुश्लकर	२,५०० पू० ई० से बहुत पहले
१३. डॉ० विंटरनिट्ज़	४,००० पू० ई०
१४. बाल गंगाधर तिलक	१,५०० पू० ई० से ४,५०० पू० ई०
१५. श्री वी० आर० कार्णादिकर	४,२०० पू० ई०
१६. प्रो० वेंकटेश्वर	११,००० पू० ई०
१७. श्री वाडार	१५,००० पू० ई०
१८. डॉ० अविनाशचन्द्र और उमेशचन्द पागवी	२५,००० पू० ई०
१९. पं० दीनानाथ शास्त्री चुलेट	लगभग तीन लाख वर्ष पूर्व

परन्तु प्राचीन और मध्यकालीन सभी भारतीय आचार्य वेद को अनादि अथवा सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही आविर्भूत हुआ मानते रहे हैं और वैदिक सनातन धर्मावम्वियों की आज भी ऐसी ही धारणा है।

वैदिक काल से लेकर आज तक वैदिक सनातन धर्म में सहस्रों महापुरुष जन्म ले चुके हैं और सैकड़ों ने समय-समय पर परिवर्तित परिस्थितियो के अनुसार धर्म और समाज में आने वाले विकारों के सुधार के लिए; वैदिक और दार्शनिक सिद्धान्तों को तत्तत्समय की जनता के लिए सुगम तथा ग्राह्य बनाने के लिए; वैदिक और दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना तथा स्पष्टीकरण के लिए; धर्म, आचार और नैतिकता के प्रतिपादन के लिए; यज्ञ, योग और साधना की व्याख्या के लिए तथा सांस्कृतिक तत्त्वों और मानवीय जीवन के निरूपण के लिए धर्मग्रन्थों की रचना की है। सम्भवतः इसीलिए आर्यों अथवा हिन्दुओं के धर्मग्रन्थों की संख्या अन्य धर्मों और मतों के ग्रन्थों की अपेक्षा

कहीं अधिक है। यह संख्या सैंकड़ों तक है। अधिक प्रसिद्ध और मान्य धर्म-ग्रन्थ हैं--वेद संहिताएँ, ब्राह्मण और आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग, धर्मसूत्र और गृह्यसूत्र, दर्शनशास्त्र, स्मृति ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, पुराण आदि। वेद संहिताएं चार हैं और चारों पर इस समय छः ब्राह्मण उपलब्ध हैं--ऐतरेय, कौषीतकि, शतपथ, तैत्तिरीय, ताण्ड्य और गोपथ। उपनिषदों की संख्या सौ से अधिक है, परन्तु मुख्य और अधिक प्रसिद्ध उपनिषद् ग्यारह हैं—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर। वेदांग छः हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। इनमें से प्रत्येक वेदांग पर अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। दर्शन शास्त्र छः हैं—वैशेषिक, न्याय. सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा। उत्तरमीमांसा को वेदान्त भी कहते हैं। स्मृतिग्रन्थ भी अनेक हैं, जिनमें से मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति अधिक प्रसिद्ध और मान्य हैं। गीता महाभारत का महत्त्वपूर्ण अंग है और धर्म, दर्शन, भक्ति, कर्मयोग आदि का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसे न केवल हिन्दू ही वरन् देश और विदेश के सभी धर्मों के विद्वान् बड़े आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। गीता में अठारह अध्याय हैं और सात सौ श्लोक। पुराण अठारह हैं—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, भविष्यत्, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड।

इन सभी धर्मग्रन्थों को अत्यन्त सम्मानित स्थान प्राप्त होने पर भी ईश्वरीय ग्रन्थ अथवा इलहामी ग्रन्थ (Revealed books) केवल वेदों को ही माना जाता है। और उन्हें ही सभी धर्मों एवं धर्मग्रन्थों का मूलाधार स्वीकार किया जाता है। मनुस्मृति में मनु महाराज ने '**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**" कह कर इसी तथ्य का समर्थन किया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद को '**सब विद्याओं का भण्डार**" बताया है और "**वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म**" कहा है।

वेद

भारतीय आर्यों (हिन्दुओं) के विश्वासानुसार वेदों का स्थान सर्वोपरि है। वेदों को ब्रह्मवाक्य और आप्तवाक्य माना जाता है। भारतीय आर्य और उनका समस्त प्राचीन साहित्य मुख्यतया वेदों और उनसे सम्बन्धित ग्रंथों

से ही अनुभूति प्राप्त करता है। विदेशी विद्वानों ने भी वेदाध्ययन की महिमा को स्वीकार किया है और कइयों ने अपना समस्त जीवन इसी कार्य में लगा दिया है। सभी श्रौत और स्मार्त ग्रन्थों ने वेदों को ईश्वरकृत और अपौरुषेय स्वीकार किया है और उनकी महिमा का गान किया है। स्वयं वेदमंत्रों में वेदों की अपौरुषेयता और महिमा का प्रतिपादन किया गया है। कुछ प्रसिद्ध श्रौत एवं स्मार्त ग्रन्थों की निम्नलिखित पंक्तियों से इस तथ्य की पुष्टि होती है :—

(१) ऋग्वेद

(क) उस सर्वहुत यज्ञस्वरूप परमेश्वर से ही ऋचाएँ (ऋग्वेद) और साम (सामवेद) उत्पन्न हुए। उसी से छन्द (अथर्ववेद) उत्पन्न हुआ और उसी से यजु: (यजुर्वेद) उत्पन्न हुआ।[1]

(ख) मानव अपनी कमनीय वाणी में वेद के ज्ञान को उस तेजोमय परमात्मा से वैसे ही प्राप्त करता है जैसे पुत्र पिता के धन को प्राप्त करता है।[2]

(ग) जो तेजोमय अग्निस्वरूप परमात्मा हमें वेद (मन्त्र) प्रदान करते हैं वही हमारी सब ओर से रक्षा किया करें और हमें सब पापों से बचावें।[3]

(२) यजुर्वेद

(क) प्रजापति परमेश्वर वेद है। वह ज्ञानस्वरूप देवों के लिए वेद रूप में प्रकट हुआ है और प्रकट होता है।[4]

---

१. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥
(ऋग्वेद १०/९०/९, यजुर्वेद ३१/७, अथर्व० १९/६/१३)

२. गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥
(ऋग्वेद १/७०/५)

३. स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः। उतास्मान् पात्वंहसः ॥
(ऋग्वेद ७/१५/३)

४. वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्योऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः।
(यजुर्वेद २/२१)

(ख) प्रजापति विश्वकर्मा हैं। ऋक् और साम प्रजापति की एष्टि नामक अप्सराएं हैं।[1]

(ग) रथ के चक्र की नाभि में जैसे आरे लगे होते हैं वसे ही उस परमात्मा में ऋक्, यजु: और साम प्रतिष्ठित हैं।[2]

(३) अथर्ववेद

(क) उस स्कंभ के विषय में कहो जिससे ऋचाएँ प्रकट हुईं और यजुर्वेद के मन्त्र प्रकट हुए, साम जिसके लोम हैं और अथर्व जिसका मुख है।[3]

(ख) वेद परमात्मा से प्रादुर्भूत होता है और उसी में लीन हो जाता है। वह ब्रह्म के धर्म का प्रतिपादक वीर्य है, तप है।[4]

(ग) वेद मृत्युतारक विश्वजित् ब्रह्मोदन में निहित हैं।[5]

(घ) वेदमाता स्तुति किये जाने पर वरों, आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति,धन और ब्रह्मवर्चस् को देने वाली तथा ब्रह्मलोकगामिनी है।[6]

(ङ) परमात्मा ऋचाओं से प्रकाशित होता है, ऋचाएँ परमात्मा से प्रकाशित होती हैं।[7]

---

१ प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम।
(यजुर्वेद १८/४३)

२ यस्मिन्नृचः साम यजुंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवारा:।
(यजुर्वेद ३४/५)

३ यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वांगिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि। (अथर्व० १०/७/२०)

४ यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्। कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह॥ (अथर्व० १९/७२/१)

५ यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥
(अथर्व० ४/३५/६)

६ स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयु: प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्। (अथर्व० १९/७१/१)

७ स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त। (अथर्व० १३/७/३८)

(४) ब्राह्मण ग्रन्थ

(क) वेद की उत्पत्ति प्रजापति से हुई ।[1]

(ख) समस्त प्राणियों और पदार्थों की स्थिति वेद में ही है ।[2]

(ग) तपोमग्न श्रान्त प्रजापति ब्रह्म ने त्रयी विद्या को सर्वप्रथम उत्पन्न किया ।[3]

(घ) प्रजापति त्रयी विद्या के साथ जलों में प्रविष्ट हुआ ।[4]

(ङ) ऋक् और यजुः अमानुषं वाणी है ।[5]

(च) प्रजापति ने इन वेदों का सृजन किया ।[6]

(५) आरण्यक

(क) यजुः ब्रह्म का उदर, साम सिर और ऋचाएँ मूर्ति हैं ।[7]

(ख) ब्रह्म ही वेद पुरुष का रस है ।[8]

(६) उपनिषद

(क) ऋक्, साम और यजुः ब्रह्म से ही प्रादुर्भूत होते हैं ।[9]

---

१ प्राजापत्यो वेदः । (तै० ३/३/२/१), प्रजापतिर्वा इमान् वेदानसृजत् । (ऐतेरय० ब्रा०)

२ त्रय्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि । (शत० १०/४/२/२२)

३ स (प्रजापतिः) श्रान्तस्तपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम् । (शत० ६/१/१/८)

४ प्रजापतिस्त्रय्या विद्यया सहापः प्राविशत् (शत० ६/३/१/१०)

५ स (ब्रह्मा) यदि पुराऽमानुषीं वाचं व्याहरेत् । ततो वैष्णवीमृचं वा यजुर्वा जपेत् । (शत० १/७/४/२०)

६ प्रजापतिः वा इमान् वेदानसृजत् । (ऐतरेय ब्रा०)

७ शां० आ० ३/७

८ ऐ० आ० ३/२/३

९ मुं० उ० २/१/६, श्वेता० ४/९,६/१८.

(ख) यजुः मनोमय पुरुष का सिर है, ऋक् दक्षिण पक्ष, साम उत्तर पक्ष और अथर्वांगिरस पूंछ (पिछला प्रदेश) हैं ।[1]

(ग) जो कुछ वेद में लिखा है वह सत्य है, उसी पर विद्वान् आश्रित हैं ।[2]

(घ) अग्नि ही उस परब्रह्म का सिर है, सूर्य और चन्द्र नेत्र हैं, दिशाएं श्रोत्र हैं और विवृत वेद उसकी वाणी है ।[3]

(ङ) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद उस महाभूत परब्रह्म का ही निःश्वास है ।[4]

(च) उस परमात्मा ने ही सर्वप्रथम ब्रह्मा को बनाया और उसे वेद प्रदान किये ।[5]

(७) स्मृतिग्रन्थ

(क) ईश्वर ने यज्ञ-सिद्धि के लिए ऋक्, यजुः और साम रूप वेदों को अग्नि, वायु और रवि द्वारा प्रकाशित किया ।[6]

(ख) वेद ही धर्म का मूल है ।[7]

(ग) चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, भूत, वर्तमान और भविष्य सब वेद से ज्ञात होते हैं ।[8]

---

१ "तस्य यजुरेव शिरः । ऋग् दक्षिणः पक्षः । सामोत्तरः पक्षः । अथर्वांगिरसः पुच्छे प्रतिष्ठा" (तै० उ०)

२ मैत्रा० उ०

३ अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः ।" (मुण्डक० २/४)

४ एतस्य वा महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः ।।" (बृहदारण्यक० ४/५/११)

५ "यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।" (श्वेताश्वतर० ६/१८)

६ 'अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्यजुःसामलक्षणम् ।।" (मनु० १/२३)

७ "वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ।" (मनु० २/६)

८ "चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ।।" (मनु० १२/९७)

(घ) वेद देवों, पितरों और मनुष्यों की आंख हैं। वे सर्वज्ञानमय हैं।[9]

(ङ) वेद अकृत्रिम ग्रन्थ-समूह हैं।[10]

(८) दर्शनग्रन्थ

(क) आत्मशक्ति द्वारा अर्थात् ईश्वर की निजी शक्ति द्वारा अभिव्यक्त होने के कारण वेद स्वतःप्रमाण हैं।[11]

(ख) ईश्वर प्राचीनतम ऋषियों के भी गुरु हैं। अतः वेद नित्य हैं[12]

(ग) वेद सभी शास्त्रों के उत्पत्तिस्थान हैं, इसीलिए वे नित्य और स्वतः प्रमाण हैं।[13]

(घ) वेद नित्य हैं, क्योंकि उनकी अभिव्यक्ति औरों के लिए (संसार के उपकार के लिए) हुई है।[14]

(ङ) ईश्वरोक्त होने के कारण वेद नित्य और प्रामाणिक हैं।[15]

(च) आप्त वचन होने के कारण वेद भी मन्त्र, आयुर्वेद आदि के समान प्रमाण है।[16]

(९) पुराण और महाभारत

(क) भगवान् विष्णु ऋक्, साम और यजुर्मय हैं। ऋक्, यजुः और साम का सार ही विष्णु की आत्मा है। अथर्ववेद से सम्पूर्ण राजकर्म और ब्रह्मत्व की व्यवस्था का ज्ञान होता है।[17]

---

९ मनु० १२/९४, २/७

१० व्यास स्मृति।

११ "निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतःप्रामाण्यम्।" (साँख्यदर्शन ५/५१)

१२ "स एष पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्।" (योग दर्शन १/१/२६)

१३ 'शास्त्रयोनित्वात्" "अत एव च नित्यत्वम्"।
(वेदान्त सूत्र १/१/३, १/३/१९)

१४ "नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात्" (पूर्वमीमांसा० १/१/१८)

१५ "तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।" (वैशेषिक दर्शन १/१/३)

१६ "मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्।"
(न्यायदर्शन २/१/६७)

१७ विष्णु पुराण, ३/३/३०; ३/४/१४

(ख) वेद निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं और उनकी महिमा अपूर्व है ।[1]

(ग) संसार के आरम्भ में स्वयम्भू भगवान् विधाता ने अनादि और शाश्वत वेदवाणी को आविर्भूत किया । वे सभी प्रवृत्तियों के स्रोत हैं ।[2]

(घ) सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्म से ब्राह्मणों, वेदों और यज्ञों की सृष्टि की गई ।[3]

इन श्रौत-स्मार्त ग्रन्थों के अतिरिक्त मध्यकालीन एवं आधुनिक कालीन आचार्यों, विद्वानों, धार्मिक नेताओं तथा महापुरुषों ने वेदों की नित्यता का प्रतिपादन किया है और उनके द्वारा प्रतिपादित दिव्य ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के कथन निम्नलिखित हैं—

मध्यकालीन कतिपय आचार्य और महापुरुष

(१) महात्मा बुद्ध

"विद्वां च वेदेहि समेच्च धम्मं ।
न उच्चावच्चं गच्छति भूरि पंजो ।।"[4]

[अर्थात् "भूरिप्रज्ञ विद्वान् वेदों के द्वारा धर्म को प्राप्त करके अस्थिरता को प्राप्त नहीं होता ।"]

(२) कालिदास

"श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ।"[5]

["स्मृतिग्रन्थ श्रुतिग्रन्थों का अनुकरण करते हैं ।"]

---

१. भागवत पुराण, १०/८७ (पूरा अध्याय)

२. **अनादिनिधना नित्या वागुत्सष्टा स्वयम्भुवा ।**
आदौ वेदमयी नित्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ।। (महाभारत २२/२३२/२४)

३. **ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविध स्मृतः ।**
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।। (गीता १७/२३)

४. संस्कृत छाया—
विद्वांश्च वेदैः समेत्य धर्मं
नोच्चावचं गच्छति भूरिप्रज्ञः ।। (सुत्तनिहत, २९२)

५. रघुवंश, ३

(३) शंकराचार्य

"महतः ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थ-द्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म नहीदृशस्य शास्त्रस्यग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः सम्भवोऽस्ति ।"[1]

[अनेक विद्याओं के उत्पत्ति स्थान, दीपक के समान सभी अर्थों के द्योतक, सर्वज्ञ के तुल्य महान् ऋग्वेदादि शास्त्रों का उत्पादक ब्रह्म (परमात्मा) है। इस प्रकार के सर्वज्ञ गुणों से समन्वित ऋग्वेदादि शास्त्र का जन्म सर्वज्ञ ब्रह्म के अतिरिक्त और किसी से सम्भव नहीं है ।]

(४) महात्मा कबीर

"वेद कतेब कहहु जनि झूठा ।
झूठा जो न विचारे ।"[2]

(५) गोस्वामी तुलसीदास

(क) "पद पाताल सीस अज धामा । अपर लोक अंग अंग विश्रामा ।।
भृकुटि विलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घनमाला ।।
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा । निसि अरु दिवस निमेष अपारा ।।
श्रवण दिसा दस वेद बखानी । मारुत स्वास निगम निज बानी ।।"[3]

(ख) "बंदउँ चारिउ वेद भव वारिधि बोहित सरिस ।"[4]

(६) गुरु नानक देव

(क) "ओंकार वेद निरमाये ।"

(ख) "सामवेद रिग जजुर अथर्वण ब्रह्मे मुख मा इयाहै त्रैगुण ।
ताकी कीमत कीत कह न सकै, को तिउ बोले जिउ बोलाइदा ।"

(ग) वेद बखान कहहि इक कहिये, ओह बे अन्त अन्त किन लइये ।।"[5]

---

१. शांकरभाष्य १/१/३
२. कबीर ग्रन्थावली, कबीर बीजक, गुरु ग्रन्थ साहब आदि ग्रन्थों में संकलित
३. रामचरितमानस, ६/१५/१-२
४. रामचरितमानस, १/१४ (ग)
५. गुरु ग्रन्थ साहब महला १ ओंकार शब्द; महला १ शब्द १७; बसन्त अष्टपदियाँ महला १ अ० ३ ।

(७) गुरु अर्जुन देव

(क) "हरि आज्ञा होए वेद, पाप पुन्न बिचारिया।"

(ख) "ओंकार उत्पाती। चार वेद चार खाणी।।"[1]

(८) दारा शिकोह

"निरन्तर और क्रमिक गवेषणा के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि अन्य समस्त दिव्य ग्रन्थों से बहुत पहले परमात्मा ने अपने दिव्य ज्ञान के चारों ग्रन्थ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ब्रह्मा आदि ऋषियों के माध्यम से हिन्दुओं के लिए आविर्भूत कर दिये थे।"[2]

आधुनिक आचार्य और महापुरुष

(१) स्वामी दयानन्द सरस्वती

(क) "वेद सब विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"[3]

(ख) ब्रह्मानन्तमनादि विश्वकृदजं सत्यं परं शाश्वतं
विद्या यस्य सनातनी निगमभृद् वैधर्म्यविध्वंसिनी।
वेदाख्या विमला हिते हि जगते नृभ्यः सुभाग्यप्रदा
तन्नत्वा निगमार्थभाष्यमतिना भाष्यं तु तन्तन्यते।।[4]

[अर्थात् "जो ब्रह्म अनन्त, अनादि, विश्व का रचयिता, अजन्मा, सत्य, पर और शाश्वत है; जिसकी वेद नामिका सनातन और निर्मल विद्या धर्म को धारण करने वाली और वैधर्म्य की नाशिका है एवं संसार तथा मनुष्यों के लिए सौभाग्यप्रद है; उस ब्रह्म को नमस्कार करके वेदार्थ-प्रतिपादन की इच्छा से मैं वेद का भाष्य आरम्भ करता हूं।"]

(२) जैनाचार्य कुमुदेन्दु

"केवल ऋग्वेद ही अनादि और अनन्त है और ईश्वरीय शब्द है। विविध

---

१. गुरु ग्रन्थ साहब, महला ५ शब्द १; महला ५ शब्द...
२. Dara Shekoha's Persian Quotations.
३. आर्य समाज के नियम, तीसरा नियम।
४. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, मंगलाचरण।

भाषाओं की इससे उत्पत्ति हुई है। सभी भाषाओं के बोलने वालों के लिए ईश्वरीय सन्देश एक ही है।"[1]

(३) दचन जी, बी० ए०, एल-एल० बी०, डी० टी० एच०

वेद ज्ञान और बुद्धि की पुस्तक है जिसमें प्रकृति, धर्म, प्रार्थनाएं चारित्रिकता, नैतिकता आदि का समावेश है। वेद शब्द का अर्थ ही है बुद्धि और ज्ञान। वेद हमें अत्यन्त पवित्र एकेश्वरवाद, विश्वजनीन प्रेम, ईश्वरीय ज्ञान और तेज, ईश्वर द्वारा असंख्य ब्रह्माण्डों के सृजन और विनाश, जीवात्माओं के हित और अनुशासन के लिए प्रकृति के शाश्वत नियम (जिसे वेद में ऋत' कहा गया है) और कर्म सिद्धान्त की शिक्षा देता है।"[2]

(४) श्री एन० बी० पावगी

"वेद ज्ञान का मूल आधार है, प्रेरणा का मुख्य स्रोत है, दिव्य ज्ञान और शाश्वत सत्यों का भण्डार है।"[3] "मैं पाठकों को निर्भय होकर यह स्मरण कराना चाहता हूँ कि वेद में अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं जिनका अभी तक किसी को भी ज्ञान नहीं, क्योंकि वेद साहित्यिक सम्पत्ति की अक्षय निधि हैं जिनके कुछ द्वार तो खुले हैं और कुछ सर्वथा बन्द हैं जिन्हें खोलने का प्रयास नहीं किया गया।"[4]

(५) सर्वपल्ली डॉक्टर राधाकृष्णन्

"वेद शाश्वत हैं। वेद स्वतः प्रमाण हैं।"[5]

(६) श्री अरविन्द

"दयानन्द की इस उक्ति में कुछ भी विचित्रता नहीं है कि वेद में वैज्ञानिक सत्य और धार्मिक सत्य दोनों सम्मिलित हैं। मैं इसके साथ अपनी मान्यता भी जोड़ता हूँ कि वेद में अन्य वैज्ञानिक सत्य भी हैं जिनका अभी तक आधुनिक विज्ञान को भी ज्ञान नहीं।'[6]

---

१. मूवलय, अध्याय ६।
२. Philosophy of Zoroastrianism & Comparative study of Religions.
३. Vedic India Mother of Parliament.
४. The Vedic Fathers of Geology; Introduction.
५. Indian Philosophy, Vol II.
६. Dayanand & Veda.

(७) श्री ए० सी० बोस

"कुछ विशेष नास्तिक सम्प्रदायों को छोड़कर भारत के सभी धर्म जो विभिन्न युगों में विकसित हुए हैं, वेदों की प्रमुख प्रामाणिकता को स्वीकार करते हैं। उपनिषदों, महाकाव्यों अथवा अन्य किन्हीं भी संस्कृत ग्रन्थों को यह सम्मान प्राप्त नहीं है।"[1]

(८) श्री सुदामा प्रसाद

"वैदिक संहिताएं सभी समयों के लिए सत्य हैं। वे आधुनिक काल में भी उतनी ही उपयोगी हैं जितनी भूतकाल में थी और जितनी भविष्य में होगी।"[2]

(९) डाक्टर मोतीलाल दास

"ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त विश्व की एकता के लिए तूर्यनाद है और आजकल जब कि **'सार्वभौम अन्तर्राष्ट्रीय योजना'** की चर्चा की जा रही है, वह समस्त संसार के सम्मुख महत्त्वपूर्ण अपील है।"[3]

इन भारतीय आचार्यों और विद्वानों के अतिरिक्त विदेशी विद्वानों और धर्माचार्यों ने भी वेदों की दिव्यता और प्रामाणिकता को स्वीकार किया है। नीचे कुछ धर्माचार्यों और विद्वानों की सम्मतियाँ दी जाती हैं :—

(१) श्री ज़रथुस्त (पारसी मत के प्रवर्तक)

अत फ़्रवख्षया अङ्‌हॅउश् अह्या वहिश्तॅम्।
अषात् हचा मज़्दा वए २ दा यँ ईम् दात्॥[4]

[अर्थात् "अब मैं संसार में सर्वोत्तम सार वेदों के विषय में कहूँगा जिन्हें मज़्दा ने हचा (वैदिक—**'ऋत महत'**) से संयुक्त करके मानवों को प्रदान किया।"]

(२) श्री लाबी (अरबी कवि)[5]

"भारत की पवित्र भूमि ! तू सब प्रकार से सम्मान के योग्य है, क्योंकि तुझ में परमात्मा ने अपने सत्य ज्ञान का प्रकाश किया। ये चारों पवित्र पुस्तकें

---

१. The Call of Vedas.

२. The Essence of Vedic Religion.

३. Aryan Path.

४. उश्त० गा० य० ४५/४/१/२

५. स्थितिकाल १७० पू० ई०।

हमारे मन की आँखों के सामने कितना पवित्र प्रकाश प्रस्तुत करती हैं। यह प्रकाश उपाकाल के सुन्दर और शान्त तेज के समान है। भारत में परमात्मा ने चारों वेदों का ऋषियों पर (ऋषियों के मन में) प्रकाश किया। साम और यजु: वे निधि हैं जिनका ईश्वर ने उपदेश दिया। मेरे भाइयो ! इनकी पूजा करो, क्योंकि ये हमें मुक्ति का मार्ग बताते हैं। इन चारों वेदों में से अन्य दो ऋग् और अथर्व हमें विश्व-भ्रातृत्व की शिक्षा देते हैं।'[1]

(३) डा० एल्फ्रेड रस्सेल वैलेस

"आश्चर्यजनक सूक्त संग्रह जिसे वेद नाम से अभिहित किया जाता है, धार्मिक शिक्षाओं की एक विस्तृत व्यवस्था है जो उतनी ही पवित्र एवं उन्नत है जितने हिब्रू धर्मग्रन्थों के कुछ सर्वश्रेष्ठ भाग हैं। ·········इसमें हम अत्यन्त उन्नत धार्मिक विचारकों की अत्यन्त आवश्यक शिक्षाएं पाते हैं। ······वैदिक सूक्तों में जो विचार उपलब्ध हैं वे हमारे धर्म-प्रचारकों और कवियों के विचारों से किसी प्रकार भी निम्नकोटि के नहीं हैं।"[2]

(४) श्री मोरिस फिलिप

"ओल्ड टैस्टामेण्ट की पुस्तकों के ऐतिहासिक एवं वंशपरम्परागत अध्ययन और आधुनिकतम अन्वेषण के बाद हम सुविधापूर्वक कह सकते हैं कि ऋग्वेद सबसे प्राचीन पुस्तक है,न केवल आर्यों की, बल्कि समस्त संसार की। ···अतः हमारा इस निर्णय पर पहुँचना ठीक और उचित ही है कि वैदिक आर्यों की उच्च एवं पवित्र मान्यताएं अत्यन्त प्राचीन दिव्य ज्ञान के आविर्भाव के फलस्वरूप निर्धारित की गई थीं।"[3]

(५) प्रोफैसर हीरन

"वेद निस्सन्देह संस्कृत में लिखे गये सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। संस्कृत की प्राचीनतम पुस्तकों में भी वेदों की विद्यमानता का उल्लेख किया गया है। केवल वेद ही मानवीय प्रगति और ऊर्ध्वमुखी विकास के लिए दिव्य प्रकाश-स्तम्भ के रूप में मार्गदर्शन कर रहे हैं।"[4]

. Lavi's verses.

२. Social Environment & Moral Progress, pp. 11 to 14.

३. The Teachings of the Vedas.

४. Historical Researches Vol. II.

(६) मोन्स डियोस डैल्बोस (फ्रांसीसी विद्वान्)

"ऋग्वेद मानव के अत्युच्च विकास की सर्वश्रेष्ठ मान्यता है।"[1]

(७) मिस्टर लिश्रन डैल्हास (फ्रांसीसी विद्वान्)

"ऋग्वेद मानवता के सर्वोच्च मार्गों की सर्वश्रेष्ठ मान्यता है।"[2]

(८) मैक्समूलर

"वेद शाश्वत हैं और इसीलिए पूर्ण तथा निर्दोष हैं।"[3] "वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं और ईश्वर के वचन कहे जाते हैं।"[4]

(९) शोपनहावर (जर्मन विद्वान्)

"इससे यह लोकप्रिय विश्वास दृढ़ होता है कि वेद शाश्वत हैं और किसी भी मानवीय कार्यकारण-परम्परा से सम्बन्ध नहीं रखते और कि वे स्वयं विश्व के विधाता ब्रह्मा द्वारा आविर्भूत हुए हैं।"

(१०) श्री बाऊलंगर (रूसी विद्वान्)

"जहाँ तक मैं वेद की शिक्षाओं को ग्रहण कर सका हूँ, ये इतनी उन्नत हैं कि मैं इस बात को अपना अपराध समझूंगा यदि रूसी जनता वेद का परिचय इसके टूटे-फूटे अथवा संदिग्ध अनुवाद से प्राप्त करे।"[5]

(११) श्रीमती ह्वीलर विल्लैक्स (प्रसिद्ध अमरीकन विदुषी)

"हम सबने भारत के प्राचीन धर्म के सम्बन्ध में सुना और पढ़ा है। यह (भारत) वेदों की भूमि है जो न केवल जीवन को पूर्ण बनाने वाले उच्च धार्मिक विचारों से ही परिपूर्ण है, वरन् उन तथ्यों से भी युक्त है जिन्हें विज्ञान ने सत्य सिद्ध किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्युत् (Electricity), रेडियम, इलैक्ट्रोन, वायुयान आदि सभी से वैदिक ऋषि परिचित थे।"[6]

---

१. हरविलास शारदा की पुस्तक 'Hindu Superiority' में उद्धृत।
२. श्री देवीचन्द द्वारा 'यजुर्वेद की भूमिका' में उद्धृत।
३. Introduction of Science & Religion.
४. Message of the Vedas.
५. श्री० टी० एल० वासवानी की पुस्तक 'टार्च बेयरर' में उद्धृत।
६. श्री देवीचन्द द्वारा यजुर्वेद की भूमिका में उद्धृत।

(१२) श्री जैकोलियट

"यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि सभी ईश्वरीय पुस्तकों में से हिन्दुओं की ईश्वरीय पुस्तक वेद ही एक ऐसी पुस्तक है जिसके विचार आधुनिक विज्ञान के अनुकूल हैं। वेद ही घोषणा करता है कि विश्व की उत्पत्ति धीरे-धीरे और क्रमिक रूप में हुई है।"[1]

(१३) काऊँट बायरन्स्टजेमा

"वस्तुतः यह उच्च विचार हमें विश्वास दिलाते हैं कि वेद एक ईश्वर को स्वीकार करते हैं जो सर्वशक्तिमान्, अनन्त, अनादि, शाश्वत, स्वयस्थित, प्रकाशमय और विश्व का स्वामी है।"[2]

(१४) श्री कोलब्रुक

"प्राचीन हिन्दू धर्म जैसा कि वह हिन्दुओं की धर्मपुस्तकों वेदों में पाया जाता है एकेश्वरवादी था।"

उपर्युक्त वेदवाक्यों; ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, दर्शनशास्त्रों एवं अन्य धर्मग्रन्थों की वेदविषयक मान्यताओं; सन्तों, भक्तों और कवियों के उद्गारों; आचार्यों और विद्वानों के कथनों; विदेशी विद्वानों की धारणाओं और स्तुति वाक्यो के आधार पर कहा जा सकता है कि वेद संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ होने के साथ-साथ अपौरुषेय अथवा ईश्वरकृत हैं। वे भारत के सभी धर्मों एवं धर्मग्रन्थों के मूलाधार हैं। अन्य देशीय धर्मों ने भी इनसे यथेष्ट प्रेरणा प्राप्त की है।

जैसे 'कुरआन' आदि अन्य धर्मग्रन्थों के पदों, वाक्यों और शब्दों की गणना की गई है वैसे ही वेदों के भी मन्त्रों और शब्दों की गणना की गई है। वस्तुतः यह गणना बहुत पहले ही कर दी गई थी और अनुक्रमणियों में यह गणना दे रखी है।

वैदिक संहिताएँ संख्या में चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववद। इन चारों को ही वेदत्रयी भी कहा जाता है। यहाँ 'त्रयी' शब्द का प्रयोग संख्यावाचक न होकर त्रिधा उपयोग वाचक है।

---

१. The Bible in India, Vol. II, Chapter I.
२. Mythology of the Hindus.

(१) ऋग्वेद

ऋग्वेद का क्रम दो प्रकार से है—(१) मण्डल सूक्त क्रम और (२) अष्टक अध्याय क्रम। पहले क्रम के अनुसार ऋग्वेद में दस मण्डल है। प्रत्येक मण्डल क्रमशः अनेक अनुवाकों और सूक्तों में विभक्त है। प्रत्येक मण्डल में सूक्तों की संख्या एक सी नहीं है और न ही प्रत्येक सूक्त में ऋचाओं की संख्या एक सी है। दस मण्डलों में कुल सूक्त १०२८ (एक सहस्र अट्ठाईस) हैं और कुल ऋचाएँ अथवा मन्त्र १०४७२ (दस सहस्र, चार सौ बहत्तर) हैं। इन ऋचाओं के अन्तर्गत १५३८२६ (एक लाख, तिरेपन सहस्र, आठ सौ छब्बीस) पद हैं और ३९७२६५ (तीन लाख, सत्तानवें सहस्र दो सौ पैंसठ) अक्षर अथवा वर्ण हैं।

	मण्डल	अनुवाक	सूक्त	ऋचाएँ
	१	२४	१९१	२००६
	२	४	४३	४२९
	३	५	६२	६१७
	४	५	५८	५८९
	५	६	८७	७२७
	६	६	७५	७६५
	७	६	१०४	८४१
	८	१०	१०३(९२+११)	१६३६+८०
	९	७	११४	११०८
	१०	१२	१९१	१७५४
कुल	१०	८५	१०२८	१०४७२+८० =१०५५२

दूसरे क्रम के अनुसार ऋग्वेद में आठ अष्टक हैं और चौंसठ अध्याय हैं। परन्तु यहां स्मरण रखना चाहिये कि इस क्रम के अनुसार भी सूक्तों और ऋचाओं की संख्या वही है, उसमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं।

अष्टक	सूक्त	वर्ग	ऋचाएँ
१	१२१	२६५	१६७०
२	११६	२२१	११४७
३	१२२	२२५	१२०६
४	१४०	२५०	१२८६
५	१२६	२३८	१२६३
६	१२४	३१३	१२५०
७	११६	२४८	१२६३
८	१४६	२४६	१२८१
८	१०१७	२००६	१०४७२
बाल खिल्य सूक्त	११	१८	८०
	१०२८	१०२४	१०५५२

(२) यजुर्वेद

यजुर्वेद दो रूपों में है—शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद को वाजसनेयी संहिता और कृष्ण यजुर्वेद को तैत्तिरीय संहिता भी कहा जाता है। अधिकांश वैदिक विद्वान् शुक्ल यजुर्वेद अथवा वाजसनेयी संहिता की ही वेदचतुष्टय में गणना करते हैं, क्योंकि कृष्ण यजुर्वेद अथवा तैत्तिरीय संहिता में कुछ ब्राह्मण भाग भी सम्मिलित है। वाजसनेयी संहिता में चालीस अध्याय हैं जिनमें १९७५ (एक सहस्र नौ सौ पचहत्तर) ऋचाएं और कण्डिकाएं हैं। यजुर्वेद की लगभग तीस प्रतिशत ऋचाएँ ऋग्वेद के अन्तर्गत हैं। यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय ही ईशावास्योपनिषद् नाम से प्रसिद्ध है जिसका दार्शनिक और आध्यात्मिक जगत् में सम्मानपूर्वक उल्लेख किया जाता है।

(३) सामवेद

सामवेद में १८७५ (अठारह सौ पचहत्तर) ऋचाएँ हैं जो पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक नामक दो भागों में विभक्त हैं। दोनों आर्चिकों के मध्य में महानाम्नी नामक आर्चिक हैं जिसमें केवल दस ऋचाएं हैं। पूर्वार्चिक में चार

काण्ड हैं—आग्नेय काण्ड, ऐन्द्र काण्ड, पावमान काण्ड और आरण्यक काण्ड। उत्तरार्चिक में इक्कीस अध्याय हैं। सामवेद संहिता की १०४ ऋचाओं को छोड़कर (जिनमें से पांच की आवृत्ति पाई जाती है) शेष सभी ऋग्वेद में पाई जाती हैं। यही देखकर अनेक यूरोपीय विद्वानों ने यह कल्पना की है कि सामवेद स्वतन्त्र संहिता नहीं है और आरम्भ में तीन ही वैदिक संहिताएँ थीं। परन्तु उनकी यह धारणा ठीक नहीं है, केवल कल्पना की है क्योंकि स्वयं ऋग्वेद में चारों संहिताओं का नामोल्लेख है और **"अंगिरसां सामभिः स्तूयमानाः"** (ऋ० १/१०७/२), **"उभौ वाचौ वदति सामगा"**, **"उद्गातेव शकुने साम गायसि"** (ऋ० २/४३/१०), **"यो जागार तमु सामानि यन्ति"** (ऋ० ५/४४/१४), **"इन्द्राय साम गायत"** (ऋ० ८/९८/१), **"साम कृण्वन् सामन्यो विपश्चित् क्रन्दन्नेति"** (ऋ० ९/९६/२२), **"परवतो न साम तद् यत्रारणन्ति धीतयः"** (ऋ० ९/१०१/२), **"अंगिरसो न सामभिः"** (ऋ० १०/७८/५), **"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे"** (ऋ० १०/९०/९), **"ये परः साम्नो विदुः"** (ऋ० २/२३/१६) आदि अनेक ऋचाओं में सामवेद का उल्लेख है। अथर्ववेद में भी **"ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह"** (अथर्व० १७/७/२८) में भी चारों संहिताओं का उल्लेख किया गया है। ब्राह्मणों और उपनिषदों में भी चारों संहिताओं का उल्लेख है। **"वेदेषु सामवेदोऽस्मि"** (गीता १०/२२) कह कर श्रीमद्भगवद्गीता में तो अन्य वेदों की अपेक्षा सामवेद के प्रति अधिक सम्मान व्यक्त किया गया है।

(४) अथर्ववेद

अथर्ववेद में बीस काण्ड हैं जिनमें सात सौ पचास सूक्त और ५९७७ (पाँच सहस्र नौ सौ सतत्तर) मन्त्र हैं। अथर्ववेद में भी लगभग सोलह प्रतिशत ऋचाएँ ऋग्वेद की हैं। ६३ मन्त्र ऐसे हैं जो चारों संहिताओं में उपलब्ध हैं। विभिन्न संहिताओं में जहाँ मन्त्रों की आवृत्ति पाई जाती है वहाँ प्रसंगानुसार अर्थ बदल जाता है।

चारों संहिताओं के मंत्रों अथवा ऋचाओं की कुल संख्या २०३४९ (बीस सहस्र तीन सौ उनचास) है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि चारों वेदों का सम्मिलित आकार वाल्मीकि रामायण के तीन चौथाई भाग से कुछ अधिक है। यदि गणना में आवृत्त ऋचाओं की पृथक् गिनती न की जाए तो कुल

संख्या लगभग सोलह सहस्र बनती है जो वाल्मीकि रामायण के दो-तिहाई भाग के बराबर है। वाल्मीकीय रामायण में चौबीस सहस्र श्लोक हैं।

वेदों का विषय क्या है? इस सम्बन्ध में अधिक मतभेद नहीं है। प्राय: सभी भारतीय प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वानों के अनुसार वेद धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाला है अर्थात् ये चारों ही वेद के विषय है। महाराज मनु के अनुसार वेद समस्त धर्मों का मूल हैं। "**धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति:**" कह कर उन्होंने सभी धार्मिक प्रश्नों और समस्याओं के लिए वेद को अन्तिम प्रमाण स्वीकार किया है जिस पर टीका-टिप्पणी और ननु नच नहीं किया जा सकता। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद के विषयों पर विचार करते हुए उन्हें चार भागों में विभक्त किया है—(१) विज्ञान, (२) कर्म, (३) उपासना और (४) ज्ञान। विज्ञान का अर्थ है समस्त विश्व का विज्ञान अर्थात् परब्रह्म परमेश्वर से लेकर कीट-पतंग और तृणादि तक सभी पदार्थों का ज्ञान। भारतीय दर्शनशास्त्र और आध्यात्मिक चिन्तन इसी से सम्बन्धित हैं। सबसे प्रमुख और सबसे आवश्यक तत्त्व जिसे समझना चाहिए और जिसकी अनुभूति प्राप्त करनी चाहिये, वह परमात्मा है जिसे अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। वस्तुतः सभी नाम उसी के हैं, परन्तु जिस नाम से उसे सामान्यतया अभिहित किया जाता है वह है '**ओ३म्**'। योगदर्शन में लिखा है कि ओ३म् ब्रह्म का वाचक है।[1] तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है कि ओ३म् ही ब्रह्म है।[2] यजुर्वेद में लिखा है कि ओ३म् सर्वव्यापक ब्रह्म का नाम है।[3] वही प्रजापति है, सब प्राणियों का स्वामी है, सारे विश्व में व्यापक है और सब प्राणियों का रक्षक है।[4] माण्डूक्योपनिषद् में कहा गया है कि ओ३म् ही अक्षर ब्रह्म है।[5] वह अविनाशी और सर्वव्यापक है। अग्नि, इन्द्र, वरुण, यम

---

१. "**तस्य वाचक: प्रणव:।**" योगदर्शन १/१/२७

२. '**ओमिति ब्रह्म।**" तैत्तिरीयारण्यक ७/८

३. "**ओ३म् खं ब्रह्म।**" यजुर्वेद ४०/१७

४. "**यस्मान्न जात: परोऽन्योऽस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापति: प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी॥**"
यजुर्वेद ८/३६

५. "**ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपख्यानम्।**" माण्डूक्योपनिषद्।

आदि भी सब उसी के गुणवाचक नाम हैं। वेदों में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन है और वैदिक ऋषि एकेश्वरवाद के ही समर्थक थे। यूरोपीय विद्वानों ने वैदिक ऋषियों को प्राचीन यूनानियों के समान बहुदेववादी एवं प्रकृतिदेववादी सिद्ध करने का यत्न किया है। परन्तु उनका वैदिक ऋषियों पर बहुदेवत्ववाद (Polytheism) का आरोप अनुचित एवं प्रमाणरहित है। उनकी भूल का वास्तविक कारण यह है कि उन्होंने इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि शब्दों को पृथक् देवतावाचक मानकर उन्हें पृथक्-पृथक् देवता स्वीकार कर लिया है। वे इस बात को भूल गये हैं कि वैदिक शब्दों के यौगिक अर्थ किये जाते हैं और ऐसा करना भारतीय भाष्यकारों में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित एवं मान्य चला आ रहा है। ब्राह्मण ग्रन्थों और निरुक्त में इस पद्धति को अपनाया गया है और प्रामाणिक माना गया है। ऐसी अवस्था में वैदिक शब्दों के अनेक अर्थ किये जाते हैं और देवतावाचक शब्दों की भी यही स्थिति है। उदाहरणार्थ ऐश्वर्यार्थक √इदि धातु से व्युत्पन्न इन्द्र शब्द के तीन अर्थ हैं—(१) सूर्य, (२) अग्नि और (३) परमात्मा। अग्नि शब्द √अञ्चु धातु से व्युत्पन्न होता है जिसके अर्थ हैं (१) जानना, (२) विद्यमान होना और (३) पूजा करना। तदनुसार अग्नि शब्द के आग और सर्वव्यापक ईश्वर अर्थ हैं। इसी प्रकार √वृङ् अथवा √वर् धातु से व्युत्पन्न होने वाले वरुण शब्द के आकाश, जल और ईश्वर अर्थ किये जाते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने '**सत्यार्थ-प्रकाश**' में इन्द्र, अग्नि, वरुण, विष्णु आदि अनेक शब्दों के यौगिक अर्थ दिये हैं और उन्हें ईश्वरवाचक शब्द स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त वेदमन्त्रों में परमात्मा के लिए तीनों लिंगों और तीनों वचनों का प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ एकेश्वरता-सूचक कुछ मन्त्र नीचे दिये जाते हैं—

(१) **इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।**
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥[1]

[उसी (ब्रह्म) को ऋषि इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं। वही दिव्य गरुत्मान् सुपर्ण है। एक होने पर भी ऋषि उसे अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि अनेक नामों से पुकारते हैं।]

---

१. ऋग्वेद १०/१६४/६४

(२) **सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।**[1]

[विद्वान् ब्राह्मण उस एक परमात्मा को अनेक रूपों में प्रतिपादित करते हैं ।]

(३) **तदेवाग्निस्तदादित्यस्तदु वायुस्तदु चन्द्रमाः ।**
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।।[2]

[वह ही अग्नि है, वह ही आदित्य है, वह ही वायु है, वह ही चन्द्रमा है; वह ब्रह्म ही शुक्र, आपः (जल) और प्रजापति है ।]

(४) **अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।**
विश्वे देवा अदितिः पंचजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।।[3]

[अदिति ही द्युलोक है, अदिति ही अन्तरिक्ष है, अदिति ही माता-पिता और पुत्र है, अदिति ही समस्त देवता हैं; अदिति ही पंच जन हैं, अदिति ही उत्पाद्य है और अदिति ही उत्पादक है ।]

इसी प्रकार के अन्य मन्त्र भी अवस्था में वैदिक संहिताओं में देखे जा सकते हैं। वैदिक ऋषियों को अनेकेश्वरवादी अथवा बहुदेववादी अथवा बहुदेववादी कहना भारी भूल है।

आधुनिक विज्ञान के मूल तत्त्व वेदों में उपलब्ध हैं। यहाँ तक कि सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व क्या स्थिति थी, इसका प्रतिपादन भी वेद में किया गया है जो आधुनिक विज्ञान के अनुसार सर्वथा ठीक है। आधुनिक विज्ञान सृष्टि का विकास एवं विस्तार विकासवाद के आधार पर स्वीकार करता है और सृष्टि का आरम्भ परमाणुओं से मानता है। वह स्वीकार करता है कि सर्वप्रथम सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार था जिसमें अनन्त परमाणु विशृंखलित रूप में फैले हुए थे। किसी दिव्य अथवा प्राकृतिक प्रेरणा से परमाणु-जगत् में गति उत्पन्न हुई और परमाणुओं के मिलन से महान् अग्निपिण्ड के रूप में सूर्य की उत्पत्ति हुई। उसकी तीव्र गति के कारण उससे टूटकर अनेक छोटे-बड़े अग्नि-गोलक दूर-दूर तक छिटक गये और अपनी धुरी पर घूमते हुए सूर्य के गिर्द घूमने लगे। इस प्रकार सौर जगत् की सृष्टि हुई। इस प्रकार के सौर जगत्

---

१. ऋग्वेद १०/११४/५
२. यजुर्वेद ३२/१
३. ऋग्वेद १/८९/१०; यजुर्वेद २५/२३; अथर्ववेद ७/६/१

अनेक हैं क्योंकि परमाणुओं के मिलन से अनेक सूर्य महान् अग्निपिण्डों के रूप में उत्पन्न हुए होंगे। प्रत्येक सौर जगत् में अपने-अपने सूर्य के गिर्द घूमने वाले पिण्ड ही ग्रह और नक्षत्र कहलाते हैं। चन्द्रमा, पृथ्वी, मंगल आदि हमारे सौर जगत् के ग्रह हैं। पृथ्वी की जब उत्पत्ति हुई तब वह एक दहकते हुए अग्नि-पिण्ड के रूप में थी। सैकड़ों अथवा सहस्रों वर्षों तक निरन्तर मूसलाधार वर्षा के पश्चात् वह शीतल हुई। तब पहले वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई और बाद में क्रमशः जीवजन्तुओं की। मानव की उत्पत्ति इन सबके बाद में हुई।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल के ७२वें (देव सूक्त), ९०वें (पुरुष सूक्त), १२९वें (नासदीय सूक्त), १३०वें और १९०वें (सृष्टि सूक्त) सूक्तों में तथा **"जीर्णं भुवनं तमसा"** (ऋग्वेद १०/८८/२) आदि मन्त्रों में इसी तथ्य का उद्घाटन किया गया है। विस्तार-भय से यहाँ उनकी विवेचना एवं व्याख्या करना सम्भव नहीं है। नासदीय सूक्त तथा सृष्टि सूक्तों में प्रतिपादित इन वैज्ञानिक तत्त्वों को देखकर पाश्चात्य वैज्ञानिक और विद्वान् भी चकित होते हैं कि वैदिक ऋषि आधुनिक विज्ञान के भी पूर्वद्रष्टा थे। श्रीमती ह्वीलर विल्लैक्स का कहना है कि "वेद न केवल धार्मिक विचारों से ही परिपूर्ण हैं वरन् उन तथ्यों से भी युक्त हैं जिन्हें विज्ञान ने सत्य सिद्ध किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्युत (electricity), रेडियम, इलैक्ट्रोन, वायुयान आदि सभी से वैदिक ऋषि परिचित थे।"[1] श्री जैकोलियट का कहना है कि "वेद ही एक ऐसी पुस्तक है जिस के विचार आधुनिक विज्ञान के अनुकूल हैं। वेद ही घोषणा करता है कि विश्व की उत्पत्ति धीरे-धीरे और क्रमिक रूप में हुई है।"[2] प्रोफेर हीरेन लिखते हैं कि 'केवल वेद ही मानवीय प्रगति और ऊर्ध्वमुखी विकास के लिए

---

1. "It is land of the great Vedas, the most remarkable works containing not only religious ideas for a perfect life, but also facts which all the science has produced true. Electricity, Radium, Electrons,. Airships, all seem to be known to the seers who found the Vedas." (Quoted by Devi Chand M.A. in his introduction to the Yajurveda).
2. "The Hindu Revelation (Veda) is of all revelations the only one whose ideas are in perfect harmony with modern science, as it proclaims the slow & gradual formation of the world."

दिव्य प्रकाश-स्तम्भ के रूप में मार्ग दर्शन कर रहे हैं।"[3]

वेदों का दूसरा महत्त्वपूर्ण विषय है 'कर्म'। कर्म से शारीरिक तथा मानसिक, सकाम और निष्काम सभी प्रकार का कर्म लिया जाता है और वेद में सभी के सम्बन्ध में उपदेश दिया गया है मानवीय जीवन के सभी पहलुओं पर और सभी आवश्यकताओं पर वेद मन्त्रों में उपदेश दिया गया है। और जीवन को सर्वथा पूर्ण बनाने का सन्देश दिया गया है। ब्रह्मचर्य, शिक्षा-प्राप्ति, गुरु-शिष्य सम्बन्ध, गृहस्थ धर्म, समाज व्यवस्था, राजनीति, शासन व्यवस्था, परोपकार, सहयोगिता आदि सभी विषयों का वेद में प्रतिपादन है। इनके अतिरिक्त इन सभी प्रकार के कार्यों में शारीरिक तथा माननिक एवं ज्ञान तथा क्रिया के सत्समन्वय की प्रवृत्ति पर जोर दिया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों की उपलब्धि के लिए वेद आदेश देता है। मोक्ष मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है जिसे ईश्वराराधना, ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना, यज्ञ, भगवद्भक्ति, त्याग, धार्मिक कार्यों के सम्पादन, आदि के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। जीवन में सफलता प्राप्ति के लिए धन का उपार्जन अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु वह धर्म के अनुकूल होना चाहिये, छल-कपट से अथवा दूसरों का अधिकार छीन कर या दूसरों के शोषण द्वारा नहीं होना चाहिये।" मा गृध : कस्यस्विद्धनम्" (यजुर्वेद ४०/१), "केवलाधो भवति केवलादी" (ऋग्वेद १०/११७/६) आदि वचन इसी भाव की पुष्टि करते हैं।

वेद का तीसरा मुख्य विषय उपासना है। उपासना शब्द का अर्थ है ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करना। वेद विश्व के रचयिता, रक्षक और संहर्ता ब्रह्मा (ईश्वर) की उपासना पर बहुत बल देते हैं। उसके सान्निध्य की उपलब्धि ही मोक्ष है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि ब्रह्म (ईश्वर, परमात्मा) एक है। वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि उसी के ही नाम हैं। शतपथ ब्राह्मण ने कहा है कि केवल ब्रह्म की उपासना करो। यजुर्वेद में कहा गया—"**तमेव विदित्वातिमृत्युमेति, नान्य पंथा विद्यतेतेऽयनाय**" (यजु० ३१/१८) अर्थात् उसी को जान कर मनुष्य

---

3. "The Vedas stand alone in their splendour, standing as beacon of Divine light for the onward march of humanity." (Historical Researches Vol. II)

मृत्यु के भय को पार सकता है, मृत्यु को पार करने का और कोई मार्ग नहीं है।" ऋग्वेद के दसवें मंडल के एक सौ इक्कीसवें सूक्त में भी कहा है कि हमें केवल उसी हिरण्यगर्भ, सर्व सृष्टि के उत्पादक और धारक, समस्त प्राणियों के उपास्य, अमरत्व और मृत्यु के स्वामी, विश्वनियन्ता प्रजापति की उपासना करनी चाहिए।

वेद का चौथा विषय 'ज्ञान' है। 'वेद' शब्द का अर्थ ही है—'ज्ञान'। यह ज्ञानार्थक विद धातु से व्युत्पन्न होता है। इस प्रकार वेद भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान के भण्डार हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने तो जोरदार शब्दों में कहा है कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।" वस्तुतः वैदिक ऋषि केवल आध्यात्मिक नेता ही नहीं थे, वे अनेक ऐसे वैज्ञानिक विचारों एवं सिद्धान्तों के भी ज्ञाता और आविष्कारक थे जिन्हें परवर्ती विज्ञान का तथा आज के विज्ञान का भी मूल आधार कहा जा सकता है। उदाहरण रूप में जैसे अथर्वा ऋषि ने अग्नि का आविष्कार किया। महर्षि विश्वामित्र ने अग्नि के उत्पादन के लिए रगड़ने की पद्धति को आविष्कृत किया। महर्षि मेधातिथि ने अरब-खरब तक की संख्या का ज्ञान संसार को दिया। महर्षि दीर्घतमाः ने वैदिक संवत् का सूत्रपात किया। महर्षि गार्ग्य ने नक्षत्रों और ग्रहों की गणना की। इसी प्रकार अनेक अन्य ऋषियों ने ज्योतिष, गणित, वैद्यक, शरीर-रचना विज्ञान आदि का विकास किया। सामान्यतया कहा जाता है कि उन ऋषियों ने वैदिक सूक्तों के दर्शन द्वारा दिव्यता सम्पन्न दृष्टि से उन वैज्ञानिक तथ्यों एवं सिद्धान्तों का आविष्कार किया।

इन के अतिरिक्त वेदों में सृष्टि की उत्पत्ति, सौरमण्डल की व्यवस्था, समाज व्यवस्था, शिल्प और उद्योग, राजा और प्रजा के कर्त्तव्य, राजसभा की व्यवस्था, और उसके कार्य विविध वर्णों और आश्रमों के कर्त्तव्यों, राष्ट्र-व्यवस्था, सहकारिता और संगठन आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है।

वैदिक धर्म के मूल सिद्धान्त

वेदों में प्रायः धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, आध्यात्मवाद, भौतिकवाद, ज्ञान, विज्ञान, सृष्टि प्रलय, मानव-जीवन के सभी पहलुओं, पुनर्जन्म, यज्ञ-विधान आदि विषयों

पर विचार किया गया है। साधारणतया वेद-प्रतिपादित सिद्धान्त संक्षेप में निम्नलिखित हैं:—

१. ईश्वर एक है जिसे इन्द्र,अग्नि, वरुण, यम आदि नामों से अभिहित किया जाता है। वही ब्रह्म है। ओ३म् उसका वाचक शब्द है, सर्वोत्तम नाम है। वह ईश्वर अथवा परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार अनादि अनन्त,अनुपम, निर्विकार, अजन्मा, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तिर्यामी, अजर, अमर, नित्य, निर्भय और परम पवित्र है। उसी की उपासना करना मानव का धर्म है।

२. ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों अनादि, अनन्त और नित्य हैं। ईश्वर सत्, चित् और आनन्द स्वरूप है। जीव में सत् और चित् दो गुण रहते हैं और प्रकृति में केवल सत गुण रहता है। ईश्वर संसार की उत्पत्ति, स्थिति, पालन और विनाश का हेतु है। वह अखिल ब्रह्माण्ड में और अणु-अणु में व्याप्त है, किसी एक ही स्थान पर अथवा आसमान पर या क्षीर सागर में ही नहीं रहता। शुद्ध भक्ति, पवित्र प्रेम, मानसिक एकाग्रता, प्राणायाम और समाधि, निष्काम कर्म, योगाभ्यास, यम नियमों के पालन से कहीं भी ईश्वर की अनुभूति प्राप्त की जा सकती

३. है। जीव चैतन्य शक्ति है एवं सूक्ष्म तथा स्वतन्त्र है। वह अपने कर्मों (अच्छे वा बुरे) के अनुसार जन्म-मरण के चक्र में फंसता है तथा आवागमन का विषय बन जाता है। ईश्वर और जीव दोनों चिद् गुण से युक्त हैं, परन्तु दोनों में अन्तर है। ईश्वर सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है परन्तु उसके फल सुख-दुःख के भोगने में परतन्त्र है अर्थात् ईश्वर के आधीन है। ईश्वर एक है, परन्तु जीव अनन्त हैं।

४. प्रकृति जड़ और अचेतन है। उस में स्वयं कार्य करने की शक्ति नहीं है। सांख्य दर्शन के अनुसार जब उसमें पुरुष (आत्मा और परमात्मा) का चैतन्य गुण प्रतिभासित होता है तब उस में संसार के सृजन की एवं सांसारिक कार्य करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है और वह अपना कार्य आरम्भ कर देती है।

५. सृष्टि अथवा संसार संसरणशील है। इस का प्रवाह अनादिकाल से चला आ रहा है अर्थात् प्रलय के बाद फिर से सृष्टि और सृष्टि के

पश्चात् प्रलय होती चली आई है। सृष्टि की उत्पत्ति परमाणुओं से हुई है। प्रलयावस्था में परमाणु विशृंखलित एवं निश्चेष्टावस्था में रहते हैं। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त के अनुसार उस समय प्रकृति न तो नितान्त अभावावस्था में ही थी और न ही प्रकट रूप में वर्तमान थी, न अन्तरिक्षलोक था और न ही आकाश, न मृत्यु थी और न ही मृत्यु के अभावरूप में अमरता ही थी। सृष्टि से पूर्व जो कुछ भी था वह अन्धकार से आवृत्त अन्धकार रूप में था अविज्ञेय था। उस अन्धकार में अव्यक्त-प्रकृति के रूप में उपादान कारण विद्यमान था परमात्मा के ज्ञानमय तप से वह महत्तत्व के रूप में प्रादुर्भूत हुआ जिससे क्रमशः सृष्टि का विकास हुआ।

६. वेदों में स्वर्ग और नरक का भी उल्लेख है, परन्तु स्वर्ग और नरक जीव को अपने अच्छे अथवा बुरे कर्मों के अनुसार प्राप्त होने वाला अच्छा अथवा बुरा जन्म है। शुभ कर्मों को करने वाले स्वर्ग पा कर अच्छी एवं उत्कृष्ट योनियों में जन्म प्राप्त करते हैं और अशुभ हिंसादि कर्म करने वाले नरक को पा कर बुरी एवं योनियों में तथा पशुपक्षियों और कीट पतंगों की योनियों में जन्म प्राप्त करते हैं।

७. वेदों में यज्ञों पर बहुत बल दिया गया है। यज्ञ वस्तुतः वैदिक-धर्म का मेरुदण्ड है। मनुस्मृति में महाराज मनु का कहना है कि वेदों का आविर्भाव ही यज्ञ-सिद्धि के लिए हुआ है।[1] बाह्य रूप से देखने पर यज्ञ का अर्थ है किसी देवता विशेष के लिए अथवा ईश्वर की नामान्तर भूत दिव्य शक्ति के लिए आज्य, हवि आदि द्रव्यों का अग्नि में आहुत करना अर्थात् आहुति के रूप में डालना, परन्तु वस्तुतः यज्ञ विलक्षण रहस्य से संवलित है। और यह रहस्य तब और भी अधिक गम्भीर हो जाता है जब वेद स्वयं कहता है कि "देवताओं ने यज्ञ से यज्ञ का यजन किया",[2] "उस सर्वहुत यज्ञ से ही विविध प्रकार के अन्नों; वनस्पतियों; ग्राम्य तथा वन्य पशु-पक्षियों; ऋक्, यजुः, साम और अथर्व नामक वेद संहिताओं; अश्वों,

---

१. अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्॥ (मनुस्मृति १/२३)

२. "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः" ऋग्वेद १०/९०/१६

गौप्रों, भेड़ों, बकरियों; साध्य-साधक ऋषियों; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामक वर्णों; सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, अन्तरिक्ष, द्युलोक, भूमि, दिशाओं, ऋतुओं, विविध लोकों आदि की सृष्टि हुई",[3] "यज्ञ की यज्ञ से साधना करनी चाहिये",[4] "विष्णु ही यज्ञ है",[5] "विराट् पुरुष ही यज्ञ है"[6] आदि। यज्ञ का रहस्य वेद के उन वैज्ञानिक तत्त्वों में से एक है जो आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों से भी अधिक उदात्त हैं। वेदार्थ की उपेक्षा करने के कारण आज ये तत्त्व हमारे लिए विस्मृत प्रायः और दुर्बोध हो गये हैं। यज्ञ शब्द की व्युत्पत्ति यज् धातु से होती है। महर्षि पाणिनि के अनुसार यज् धातु का अर्थ है—देवपूजा, संगतिकरण और दान। ये तीनों अर्थ परब्रह्म विराट् पुरुष, प्रकृति, मानव और मानवीय आचार-व्यवहार में लागू होते हैं। यज्ञ साधारणतया दो प्रकार का होता है—(१) एक वह यज्ञ जो यज्ञमय परमात्मा के द्वारा और प्रकृति के द्वारा निरन्तर किया जा रहा है और जिसके द्वारा इस विश्व का सृजन पालन और संहार होता है। (२) दूसरा यज्ञ अग्निहोत्र के रूप में किया जाता है और वह लोक व्यवहार तथा मानव-कल्याण के लिए आवश्यक है, क्योंकि उसमें अपनी प्रियतम वस्तु का देवता (इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि के रूप में ईश्वर)के उद्देश्य से अथवा समाज-कल्याण के उद्देश्य से समर्पण किया जाता है। यह दूसरे प्रकार का यज्ञ पहले प्रकार के यज्ञ पर आश्रित सा रहता है। इससे कर्मशुद्धि, देहशुद्धि, इन्द्रिय शुद्धि, अहंकार शुद्धि और चित्तशुद्धि होती है। यज्ञ का फल स्वार्थ नहीं, परार्थ होता है। यज्ञ भावना से किये गये कर्म से कर्मों का नया आवरण नहीं बनता, प्रत्युत पहले का आवरण क्षीण होता है। इससे जीव क्रमशः कल्याण के मार्ग में अग्रसर होता है, ब्रह्म और प्रकृति के रहस्य को समझता है और अन्त में महाज्ञान को प्राप्त करता है। यज्ञ विज्ञान को एवं यज्ञ से उत्पन्न फल की यथार्थता को सम्यक् रूप से समझने के लिए और त्याग और ग्रहण के सिद्धान्त का समझना आवश्यक हैं, क्योंकि त्याग

---

३. ऋग्वेद १०/९०/६—१३

४. **"यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्"** यजुर्वेद १८/२९

५. शतपथ ब्राह्मण

६. कौशीतकी ब्राह्मण १७/७

श्रौर ग्रहण दोनों कर्म के श्रंग हैं श्रौर सृष्टि-विज्ञान के श्रंग हैं। यज्ञ में मनुष्य अपनी श्रेष्ठ वस्तुश्रों को जिन पर उसका स्वत्व रहता है उच्चतर अथवा दिव्य स्वभाव को अर्पित कर देता है, क्योंकि यज्ञ का लक्ष्य है उच्च अथवा दिव्य सत्ता को प्राप्त करना एवं निम्न या मानवीय सत्ता को उस दिव्य सत्ता से मुक्त कर देना तथा उसके नियम श्रौर सत्य के अधीन कर देना।

८. वेद विश्वबन्धुत्व की भावना में विश्वास रखते हैं श्रौर मानवमात्र के लिए कल्याण की भावना का उपदेश देते हैं। वे समस्त विश्व को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ मानव बनने श्रौर बनाने का आदेश देते हैं। संकीर्ण स्वार्थ की एकांगिता का वेद समर्थन नहीं करते। वे उदारता श्रौर विश्वबन्धुता की प्रेरणा देते हैं। ऋग्वेद श्रौर अथर्ववेद के सामनस्य सूक्त सौहार्द, समत्व, सह-अस्तित्व श्रौर सह-कारिता के सद्भावों के अत्युत्कृष्ट उदाहरण हैं। वेदों में अकेला खाने वाले को पाप खाने वाला बताया गया है।[1] वैदिक प्रार्थनाएं विश्वबन्धुत्व, विश्वशान्ति, मानवमात्र में परस्पर सौहृदार्द, मैत्री श्रौर साहाय्य की भावनाश्रों से श्रोतप्रोत हैं। उदाहरणार्थ जैसे—

(क) मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ (यजुर्वेद ३६/१८)

[मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूँ। हम सब लोग मित्र की दृष्टि से परस्पर एक-दूसरे को देखें।]

(ख) यांश्च पश्यामि यांश्च न।
तेषु मा सुमतिं कृधि॥ (अथर्ववेद १७/१/७)

[जिनको मैं देखता हूँ श्रौर जिनको नहीं देखता हूँ अर्थात् जो आँखों के सामने हैं श्रौर जो आँखों से श्रोझल हैं उन सभी के प्रति मुझे सुमति-सद्भावना से युक्त करो।]

(ग) संगच्छध्वं संवद्ध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

(ऋग्वेद १०/१९१/२)

---

१. 'केवलाघो भवति केवलादी" ऋग्वेद १०/११७/६

हे मनुष्यो ! तुम सब परस्पर मिलकर चलो, परस्पर मिलकर बातचीत करो, आप सबके मन सहमत अर्थात् समान ज्ञान वाले हों जैसे पूर्वदेव अर्थात् सूर्य, चन्द्र आदि देव सनातन काल से परस्पर अविरोध भाव से और प्रेम से अपने कार्यों को करते चले आ रहे हैं वैसे ही आप भी एकमन होकर अपने कर्त्तव्य पालन करो ।]

(घ) समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेव वो हविषा जुहोमि ।।

(ऋग्वेद १०/१९१/३)

[आप सबके विचार समान हों, समिति अर्थात् कार्यक्षेत्र में कार्यप्रवृत्ति समान हो, आप सबके मन और चित्त एक समान हों । आप सबके लिए मैं समान मन्त्र (उद्देश्य) को अभिमन्त्रित करता हूँ जिससे आप सबका कल्याण हो । मैं समान हवि से अर्थात् यज्ञाहुति की समान भावना से आहुत अर्थात् स्वीकार करता हूँ ।]

(ङ) समानी व आकूतिः समाना हृद्यानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।

(ऋग्वेद १०/१९१/४; अथर्ववेद ६/६४/३)

[आप सबकी आकृति (चित्तवृत्ति) एक समान हो, आप सबके हृदय और मन एक समान हों जिससे आप सब में सह-अस्तित्व की भावना उत्पन्न हों । तभी विश्व के प्राणी परस्पर सौहार्द से निवास कर सकते हैं ।]

(च) सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्योअन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।।

(अथर्ववेद ३/३०/१)

[हे मनुष्यो ! मैं तुम सबको समान हृदय वाला, समान मन वाला द्वेष आदि की भावना से रहित करता हूँ । हनन के अयोग्य गौ जैसे अपने उत्पन्न हुए बछड़े से प्रेम करती है वैसे ही तुम भी एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक व्यवहार करो ।]

वेदों की विशेषताएँ

वैदिक साहित्य के भारतीय विद्वानों के अनुसार वेद अपनी अनेक

विशेषताएं रखता है जो उसे समस्त वाङ्मय में सर्वोपरि स्थान दिलाती हैं। जैसे—

१. वेद अपौरुषेय हैं। ऋषि मन्त्रों के केवल द्रष्टा अथवा व्याख्याता थे।
२. वेद नित्य हैं, रहस्यमय हैं और अनन्त ज्ञान का भण्डार हैं।
३. वेद देश और काल से अतीत हैं। वे किसी एक मानव समाज के ग्रन्थ नहीं हैं। वे विश्व के समस्त मानव समाज के कल्याणदायक ग्रन्थरत्न है।
४. वेद लोक व्यवहार के उपदेष्टा हैं; अध्यात्म ज्ञान के शिक्षक हैं; परमज्योतिर्मय प्रभु का समस्त प्राणियों के लिए मधुर सन्देश हैं।
५. वेद ज्ञान, कर्म और उपासना; यज्ञ, योग और साधना; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; ग्रहण और त्याग; प्रेम और श्रेय, भौतिक, दैविक और आध्यात्मिक सभी विषयों पर प्रकाश डालते हैं।

इन सब विशेषताओं के साथ-साथ वेदों की एक और बड़ी विशेषता है और वह यह कि वैदिक संहिताओं का जिस रूप में आविर्भाव हुआ वे उसी शुद्ध रूप में आज भी उपलब्ध हैं। उनमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं हुआ। संसार के अन्य किसी भी ग्रन्थ के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। भारतीय ऋषियों, मुनियों और ब्राह्मणों की संसार को यह बहुत बड़ी देन है और यह उनके महान् तप और त्याग की पराकाष्ठा है कि उन्होंने आरण्यक जीवन अपना कर भी, व्रत और उपवास करके भी, निर्धन और त्यागपूर्ण जीवन बिता कर भी वेद की पूर्णतया रक्षा की है और उसके एक अक्षर को भी स्खलित, च्युत तथा परिवर्तित नहीं होने दिया। वेद पाठियों के मुख से आज भी वेदमन्त्रों का सस्वर उच्चारण उसी प्रकार विशुद्ध रूप में सुना जा सकता है जैसा हजारों-लाखों वर्ष पूर्व प्राचीन वैदिक युग में किया जाता था। इसके लिए ऋषियों ने अष्ट विकृतियों[1] की व्यवस्था की है। इन विकृतियों के अनुसार वेदमन्त्रों का प्रत्येक पद क्रमोच्चारण तथा विलोम उच्चारण में अनेक बार आता है, जिससे उसके रूपज्ञान में किसी प्रकार की सम्भावना हो ही नहीं सकती।

---

१. जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥

३

पारसी मत

फारस (सं० पारस) से सम्बन्धित होने के कारण तथा वहां से आने के कारण पारसी लोगों का यह नाम पड़ा। जहां तक उनके धर्म का सम्बन्ध है वे ज़रथुस्त्री हैं और ज़रथुस्त्र द्वारा प्रवर्तित धर्म को मानते हैं।

ग्रीक पुस्तकों में ज़रथुस्त्र को ज़ोरोस्त्रेस अथवा ज़रस्ट्रेडेस (Zoroastres or Zarastredes) कहा गया है और रोमन लोग उन्हें ज़ोरोस्तर (Zoroaster) कहते हैं। फारसी में उन्हें ज़रदोश्त कहा जाता है।

भारत में पारसियों की संख्या बहुत थोड़ी (लगभग एक लाख) है, परन्तु उन्होंने भारत की और विशेष कर आधुनिक भारत की बहुत सेवा की है। इतिहासज्ञों के अनुसार पारसी ईरानी आर्यों की सन्तान हैं। इस लिए उनकी कई बातें भारतीय आर्यों (हिन्दुओं) से मिलती-जुलती हैं। उदाहरण रूप में प्राचीन पारसियों (ईरानी आर्यों) में भी भारतीय आर्यों के समान चार वर्गों अथवा जातियों (१) **आथवन (ब्राह्मण)**, (२) **रथैस्तार (क्षत्रिय)**, (३) **वास्त्र्योष (वैश्य) और (४) हुतोक्ष (शूद्र, दास)** का विधान था। वे भी प्रकृति के दिव्य तत्त्वों सूर्य, अग्नि, वायु, जल, चन्द्रमा आदि की दिव्यता में विश्वास रखते थे और इन सभी दिव्य तत्त्वों के ऊपर और इनमें परिव्याप्त अदृश्य, सूक्ष्म और सर्वोच्च तत्त्व ईश्वर को मानते थे। वे भी जात कर्म संस्कार करते थे।

पारसियों की परम्परा के अनुसार हज़रत ज़रथुस्त्र का जन्म और जीवन अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओं से युक्त था। इतिहासकारों के अनुसार उनका जन्म ६००-१००० ई० पू० मेडिया (Media) में र्हगा (Rhaga) नामक नगर में हुआ। वे क्योमर्स महाराज के वंशज थे उनके पिता का नाम यूरशप और माता का दगदुइया था। उनका कार्यक्षेत्र बैक्टरिया, पूर्वी मेडिया, ईरान और फारस रहा। उनकी पत्नी का नाम ह्वोवी (Hvovi) था और छः सन्तानें थीं जिनमें से तीन पुत्र थे और तीन पुत्रियां। वे अधिकतर एकान्त जीवन बिताते

थे। वृद्धावस्था में बाल्क (Balk) नामक स्थान पर तुरामियनों (Turamians) के एक समूह ने उनका वध कर दिया। उस समय तक उनके मत का प्रसार हो चुका था।

पारसियों का परम पवित्र और प्राचीनतम ग्रन्थ अवेस्ता है।

अवेस्ता

अवेस्ता तौरेत, बाईबल, कुरआन आदि से कहीं अधिक प्राचीन ग्रन्थ है। अनेक विद्वानों के अनुसार ज़रथुस्त्र के विचारों से तौरेत, बाईबल और कुरआन आदि के रचयिता प्रभावित थे। यहूदी, ईसाई और इस्लाम मतों के सिद्धान्तों की पारसी मत के सिद्धान्तों के साथ तुलना करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि तीनों के अनेक सिद्धान्त ज्यों के त्यों पारसी धर्म-ग्रन्थ में विद्यमान हैं और स्पष्टतः वहां से लिए गये हैं एवं कुछ सिद्धान्त थोड़े परिवर्तित रूप में ग्रहण किये गये हैं। उदाहरणार्थ जैसे—ईश्वर की एकता, ईश्वर का निवास-स्थान आकाश, पवित्र ईश्वरीय शक्ति और अपवित्र शैतान की कल्पना, पैग़ाम्बरवाद और ईश्वर का फरिश्तों द्वारा पैग़ाम्बर के पास सन्देश भेजना, पैग़ाम्बर की पुस्तक को ईश्वरीय पुस्तक मानना, पैग़ाम्बर और उसकी पुस्तक पर ईमान लाने से जन्नत (स्वर्ग) की प्राप्ति, न्याय के दिन पैग़ाम्बर की सिफ़ारिश (शफ़ाअत) से जन्नत मिलना, मौजज़े और चमत्कार, पैग़ाम्बरों का मैराज अर्थात् ईश्वर के साथ आसमान पर मुलाकात, आकाश पर स्वर्ग और नरक का अस्तित्व, छः दिन में सृष्टि की रचना और सातवें दिन ईश्वर द्वारा आराम करना, फरिश्तों की सत्ता और उनके अलग-अलग नाम, प्रलय के पश्चात् मुर्दों का जीवित होना और उनसे हिसाब लिये जाने के लिए दिन की नियुक्ति, पूजा और उपासना से पहले स्नान करने या हाथ-मुंह धोकर वुज़ू करने अथवा पानी न मिलने की अवस्था में मिट्टी या रेत से तैम्मुम करने की पद्धति, सम्मिलित पूजा और उपासना, जीवन को सदाचार पूर्ण बनाने की शिक्षा आदि ऐसे सिद्धान्त हैं जो चारों धर्मों (पारसी, यहूदी, ईसाई और इस्लाम) में समान रूप से उपलब्ध हैं। स्पष्ट है कि इन सबकी उद्भावना पहले श्री ज़रथुस्त्र ने की। उनका अनुकरण हज़रत मूसा ने किया। तब उन दोनों का अनुकरण ईसाइयों ने किया और अन्त में तीनों का अनुकरण मुहम्मद साहब ने किया।

पारसियों के अनुसार अहुरमज़दा (ईश्वर) एक है जो सर्वव्यापक, सर्व-

शक्तिमान् और परम दयालु है। यहूदियों के अनुसार यहुवा (ईश्वर) भी इन्हीं गुणों से सम्पन्न है। ईसाई भी ऐसा ही मानते हैं। मुहम्मद साहब ने भी (अल्ला) ईश्वर के सम्बन्ध में ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं। पारसी मानते हैं कि अहमजदा ने ज़रथुस्त्र को अपना पैग़ाम्बर चुना और सरोश नामक फरिश्ता को अपनी आज्ञाएं देकर उनके पास भेजा। उन्हें मुलाकात के लिए आसमान पर बुलाया गया और उन्हें आसमानी पुस्तक अवेस्ता दे कर लौटाया गया है। जो ज़रथुस्त्र तथा अवेस्ता पर ईमान लाता है वह स्वर्ग में जाएगा और उनपर ईमान न लाने वाला नरक में जायगा। यहूदियों का भी ऐसा ही मत है। वे हज़रत मूसा को पैग़ाम्बर मानते हैं जिनके पास फरिश्ता जब्राईल यहुवा (ईश्वर) के सन्देश लाता है। हज़रत मूसा की यहुवा से अनेक मुलाकातें हुईं और उन्हें तौरेत (तौरात) नामक ग्रन्थ दिया गया। जो व्यक्ति हज़रत मूसा और तौरेत पर ईमान लायेगा, वह अवश्य जन्नत (स्वर्ग) में जायेगा, ईमान न लाने वाला दोज़ख (नरक) में जायेगा। ईसाई हज़रत ईसा को न केवल ईश्वर का पैग़ाम्बर ही, वरन् इकलौता बेटा भी मानते हैं। जब्राईल उनके पास ईश्वरीय सन्देश लाता था और बाईबल ईश्वरीय पुस्तक है। ईसा और बाईबल पर ईमान लाने वाले को ही स्वर्ग मिलेगा, दूसरों को नरक मिलेगा। यहां यह स्मर्तव्य है कि बाईबल में पूर्ववर्ती पैग़ाम्बरों को स्वीकार किया गया है, परन्तु ईसा (क्राईस्ट) को प्रमुखता दी गई है। इस्लाम के अनुसार अल्ला (ईश्वर) ने हज़रत मुहम्मद को अपना पैग़ाम्बर चुना और जब्राईल फरिश्ता उनके पास अल्ला के सन्देश लाता था। मुहम्मद साहब ने भी शबे मैराज (मैराज अथवा ईश्वर से मुलाकात की रात) में आकाश की यात्रा की और कुरआन ईश्वरीय पुस्तक है। मुहम्मद साहब तथा कुरआन पर ईमान लाने वाले को बहिश्त (स्वर्ग) मिलेगा और उनपर ईमान न लाने वाले को नरक में जाना पड़ेगा। मुहम्मद साहब ने भी कुरआन में अपने से पूर्ववर्ती अनेक पैग़ाम्बरों के नाम गिनाये हैं और उनसे सम्बन्धित कहानियां लिखी हैं। पारसियों के अनुसार न्याय के दिन (Day of Judgement) ज़रथुस्त्र रक्षक बनेगा, यहूदियों के अनुसार हज़रत मूसा, ईसाइयों के अनुसार हज़रत ईसा और मुसलमानों के अनुसार हज़रत मुहम्मद। इस समता के आधार पर कहा जा सकता है कि मूल रूप में ये सभी मान्यताएं अवेस्ता में थीं। यहां से वे क्रमशः तौरेत, बाईबल और कुरआन में आईं।

अवेस्ता को ज़ेन्द-अवेस्ता भी कहते हैं। ज़ेन्द वस्तुतः अवेस्ता की प्राचीन टीका है जो पहलवी में लिखी हुई है और मूल ग्रन्थ के नाम के साथ ही अभिहित की जाती है। अवेस्ता ज़रथुस्त्र की वाणियों का संग्रह है जिन्हें गाथाएं भी कहा जाता है। डॉक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के अनुसार ज़रथुस्त्र द्वारा लिखी गई गाथाओं का रचनाकाल साधारणतया ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी था।[1] चैम्बर्स डिक्शनरी के अनुसार अवेस्ता का वर्तमान रूप में संकलन ईसा की चौथी शताब्दी में शाहपुर द्वितीय (शासनकाल ३०९-३३८ ई०) के शासनकाल में हुआ। डॉक्टर सी० कुन्हन राजा के अनुसार ज़रथुस्त्र का समय लगभग १००० पूर्व ईसा है और गाथाओं में दी गई उनकी जीवन-कहानी श्रीमद्भागवत में दी गई श्रीकृष्ण की जीवन-कहानी से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। दोनों के जन्म का कारण भी एक-सा ही बताया गया है। भागवत में पाप-भाराक्रान्त पृथ्वी गौ के रूप में भगवान् विष्णु के पास सहायता मांगने के लिए जाती है और भगवान् कृष्ण रूप में उसके कष्टों को दूर करने का वचन देते हैं। अवेस्ता में पृथ्वी गौ के रूप में अहुर मज्दा के पास शरण पाने के लिए जाती है और वे ज़रथुस्त्र को भेजने का वचन देते हैं। पारसी-परम्परा के अनुसार हज़रत ज़रतुश्त (ज़रथुस्त्र) ईसा से लगभग २५०० वर्ष पूर्व ईरान मे उत्पन्न हुए। साधारणतया ज़रथुस्त्र का स्थितिकाल ६०० ई० पू० से लेकर १००० ई० पू० स्वीकार किया जाता है। और यही समय अवेस्ता की रचना का भी है।

उपलब्ध अवेस्ता विभिन्न भागों में विभक्त है। कहा जाता है कि ज़रथुस्त्र ने दो लाख पद लिखे थे। अरब में अनुज़ाफ़िर अत्तावरी द्वारा सुरक्षित एक कहावत के अनुसार ज़रथुस्त्र की रचनाएँ बारह सौ चर्मपत्रों (Parchments) पर लिखी हुई थीं। यूनानी इतिहासकारों के अनुसार मूलग्रन्थ इक्कीस नास्कों (भागों) में विभक्त था। सम्भवतः सिकन्दर के आक्रमण के समय इसका बहुत सा भाग नष्ट हो गया। बाद में यहूदियों, ईसाइयों और विशेष रूप से मुसलमानों ने भी इस ग्रन्थ को ढूंढ़-ढूंढ़ कर नाश किया। नष्ट हुए अठारह नास्कों (भागों) में ज़रथुस्त्र का व्यक्तिगत इतिहास और जीवन-परिचय भी था। उन्नीसवां नास्क पूर्ण और सुरक्षित है। आजकल उसे **वेन्दीदाद** (Vendidad) कहा जाता है। **वेन्दीदाद** का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है 'राक्षसों के विरुद्ध' (against the demons)। अवेस्ता का प्रमुख उपलब्ध भाग **'यस्न'** (Yasnas)

1. Indo-Aryan and Hindi, page 55.

हैं। 'यस्न' संस्कृत ने 'यज्ञ' शब्द का रूपान्तर है और यस्नों का उपयोग पूजा के लिए होता है। यस्न भाग ७२ अध्यायों में विभक्त है। ये अध्याय आधार में लगभग बराबर हैं। इन सब को तीन बड़े विभागों में विभक्त किया जाता है। पहले विभाग में सत्ताईस अध्याय अथवा प्रकरण सम्मिलित हैं। अट्ठाईसवें अध्याय से लेकर त्रेपनवें अध्याय तक दूसरा विभाग है जिसे गाथाओं के नाम से भी पुकारा जाता है। इन छब्बीस अध्यायों में संगृहीत गाथाएँ पांच वर्गों में विभक्त हैं। पांचों वर्गों में अलग-अलग छन्दों का उपयोग किया गया है। गाथाओं में प्रार्थनाएं एवं दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विचार हैं। तीसरे भाग में चौवन से लेकर बहत्तर तक अध्याय सम्मिलित हैं। विस्पॅरद (Vispered) (संस्कृत=विश्वे ऋतवः)यस्न भाग का परिशिष्ट है। यष्टों(संस्कृत=यजतः) में इक्कीस सूक्त हैं जो वन्दनीय दिव्य पुरुषों के सम्बन्ध में हैं। यहाँ यह बात विचारणीय है कि अवेस्ता के पहलवी रूपान्तर दिनकर्द (Dinkard) में वेन्दीदाद, गाथाएँ और यष्ट सम्मिलित हैं। उनके साथ उन प्राचीन नास्कों के विषयों का भी उल्लेख है जो नष्ट हो चुके हैं। परन्तु उसमें यस्नों तथा विस्पॅरद का उल्लेख नहीं है।

गाथाओं में अत्युत्कृष्ट काव्यमयी भाषा में अत्युच्च भावों को व्यक्त किया गया है। यष्टों में न केवल काव्यमयी भाषा और छन्दो योजना ही दर्शनीय है, वरन् उसमें काव्यकला के उत्कृष्ट उदाहरण भी देखे जा सकते हैं। डॉक्टर तारापोरवाला, डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या आदि के अनुसार भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से गाथा और ऋग्वेद के आरम्भिक मन्त्र समान हैं और दोनों में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। डॉ० तारापोरवाला का तो यहाँ तक कहना है कि गाथा के मन्त्रों को उसी आसानी से वेदमन्त्रों की भाषा में बदला जा सकता है जिस आसानी से पाली और प्राकृत के श्लोकों को संस्कृत के श्लोकों में परिवर्तित किया जा सकता है। निम्नलिखित शब्दों, वाक्यों और वाक्यांशों से इस तथ्य की भली भांति पुष्टि हो सकती है :—

अवेस्ता	वैदिक	अवेस्ता	वैदिक
अहुर	असुर	यज़	यज
अषव	शिव	यत् वा	यद्वा
अथा	अथ	ख्षथ्र-वर्ह्य	क्षत्र-वीर्य
ख्रतुश्	क्रतुः	नेॅमसॅते	नमस्ते

ख्रतुमाम्रो	क्रतुमान्	मइन्यु	मन्यु
कुथ्र	कुत्र	थ्राता	त्राता
यथ्र	यत्र		
हम्रोम	सोम	पित	पिता
हउर्वतात्	सर्वताति	नना	नाना
सूराम्रो	शूरो	यथ	यथा
ज्नाता	ज्ञाता	मज़ीबीश्	महीभिः
दए व	देव		
वएँद	वेद		

वाक्य और वाक्यांश

अवेस्ता	वैदिक
१ आपो···यासामि (यस्न ६५/११	१ अपो याचामि। (ऋग्वेद १०/६/५)
२ अर्य्यमनम्···यजमइदे। (यस्न ५४/२/१)	२ अर्यमणं यजामहे। (अथर्व० १४/१/१७)
३ अङ्‌रो मईन्युश। (वेंदीदाद, अ० १)	३ अङ्गिर मन्यवे। (ऋग्वेद ८/८४/४)
४ वरन्यनांमच दएवनांम्।	४ वरेण्यं···देवानाम् (देवस्य)।
५ नॅमसॅत्ते २ अहुरमज्द।	५ नमस्ते असुर महः।

ये उदाहरण केवल नमूने के रूप में रखे गये हैं। ऐसे पच्चासों और उदाहरण मिल सकते हैं जिनमें भाषागत समता के साथ-साथ अर्थगत समता और भावगत उपलब्धि होती है। भाषा वैज्ञानिक के अनुसार इस समता का मुख्य कारण यह है कि ईरानी और भारतीय आर्य कुछ समय तक ईरान (आर्याणाम्) में इकट्ठे रहे थे। उनके अनुसार वेद के अनेक सूक्त सम्भवतः वहीं रचे गये थे। परन्तु इनसे अवेस्ता पर वेद का प्रभाव भी सिद्ध होता है और यह सूचित होता है कि ज़रथुस्त्र वेद के प्रति आदरपूर्ण दृष्टिकोण रखते थे, परन्तु साथ ही अपने देश की विकृतावस्था के सुधार के लिए तथा अपने नवीन मत के प्रवर्तन और अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए भी कटिबद्ध थे। उनके द्वारा अवेस्ता में बार-बार किया 'वएँद' (वेद) शब्द का प्रयोग भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है। जैसे—**अजॅम्‌चीत् अह्ला मज्दा थ्वाँम् मङ्‌ही पम्रो् उर्वाम्**

वएँदम्"[1] [मैं तुम्हारा चिन्तन करता हूँ हे महान्, और इस (संसार अथवा जीवन) के आरम्भिक वेद का], "अङ्हीश्चा अङ्हवस्चा अपयेहती रएखनंङ हो वएँदम्"[2] [ऐसे धनलुब्धकों से, हे सद्गृहस्थो (पुरुषो और स्त्रियो) वेद को छीन लो।] आदि। जरथुस्त्र ने अपने आपको अनेक वार 'वएँदमनों', 'वए२दॅमनाइ' (वेद में मन अर्थात् विश्वास रखने वाला) कहा है और मुक्त कण्ठ से वेद की प्रशंसा करते हुए कहा है—

"कुथा तो२इ अरॅद्रा मज्दा यो२इ वङ्हॅउश् वए२दॅना मनङ्हो ।[1]
सॅन्गहूश् रए२खॅनाओ अस्पॅन्चीत साद्राचीत् चारव्रयो२ उर्षॅउरू ।
नए२चीम् तॅम् . अन्यॅम् यूष्मत् वएदा अषअथा-नाओ थाज्दूम् ।।[3]

(हे मज़्दा, कहाँ हैं वे तेरे भक्तजन जो प्रेम तथा अतिचेतना रखने के कारण विपत्तिकाल में भी वङ्हउ के वेद द्वारा सैद्धान्तिक कोश प्रस्तुत करते हैं। हे वेदो ! मज़्दा के अतिरिक्त उनमें से किसी एक को हमारे पास लाओ। हे सत्य शान्तिमय ! अब हमारी रक्षा कर।) श्री रुलिया राम काश्यय के अनुसार यहाँ "वङ्हउ के वेद" से अभिप्राय अथर्ववेद से है।

अत फ़्रवखषया अङ्हॅउश् अह्या वहिश्तॅम् ।
अषात् हचा मज़्दा वए२दा यॅ ईम् दात् ।।[4]

(अब मैं संसार में सर्वोत्तम सार वेदों के विषय में कहूँगा जिन्हें मज़्दा ने हचा (वैदिक—ऋतं महत्) से संयुक्त कर के मानवों को प्रदान किया।)

जरथुस्त्र के सिद्धान्त

(१) श्री जरथुस्त्र के अनुसार अहर (असुर)[5] विश्व की सर्वोच्च शक्ति है। वह सभी दृश्य तत्त्वों से ऊपर है, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। उसी की पूजा करनी चाहिये। (२) श्री जरथुस्त्र का धर्म आचार प्रधान धर्म

---

१. यस्न, २९/१०
२. यस्न, ३२/११
३. यस्न, ३४/७
४. उश्त० गा० य० ४५/४/१/२
५. असुर शब्द वेद में देवता वाचक है और इन्द्र का विशेषण है। अवेस्ता में इसका अर्थ ईश्वर है।

है । उन्होंने जीवन को श्रयस्कर और मंगलमय बनाने के लिए बड़ा ज़ोर दिया है। (३) वे मानवता के समर्थक थे । उन्होंने अपने अनुयायियों अथवा अपने देश के नरपतियों को कभी यह नहीं कहा कि तुम अपने पड़ोसी देशों में ज़रथुस्त्र-मत का प्रचार करने के लिए आग और तलवार का प्रयोग करो, अथवा निर्धनों को पीड़ित करो, अथवा दूसरों के धर्म में हस्तक्षेप करो । (४) वे तो असत पर सत की विजय का उपदेश देते थे । "यतो धर्मस्ततो जयः" कह कर भगवान् कृष्ण ने धर्म द्वारा विजय प्राप्त करने का उपदेश दिया है । श्री ज़रथुस्त्र भी कहते हैं—**"अश्य वोहू वहिश्तम् अस्ति उश्त अस्ति"** अर्थात् "धर्म सर्वोच्च अच्छाई है, यह प्रकाश है ।"

अवेस्ता के अनुसार—

(१) अहरमज़्दा एक है जो अनादि और अनन्त है । वह सर्वव्यापक है, परन्तु उसके रहने का यथार्थ स्थान आकाश है । वह सर्वशक्तिमान् है वही संसार को बनाता, बिगाड़ता और स्थिर रखता है ।

(२) अहरमज़्दा की दो बड़ी शक्तियां हैं—स्पैंटामैन्यू और अंग्रामैन्यू । स्पैंटा-मैन्यू श्रेष्ट कार्यों और अच्छाइयों की शिक्षा देती है और अंग्रामैन्यू मनुष्य को बुरे और हेय कार्यों में प्रवृत्त करती है ।

(३) जीव और प्रकृति अनादि और अनन्त हैं । वे सदा अहरमज़्दा के अधीन रहे हैं और सदैव आधीन रहेंगे ।

(४) मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, परन्तु फल भोगने में अहरमज़्दा के अधीन है । सभी जीवधारियों में जीव समान हैं । बिना कारण किसी जीव की हिंसा नहीं करनी चाहिये ।

(५) जीव को अपने अच्छे या बुरे कर्मों के द्वारा अच्छा या बुरा जीवन आवा-गमन के द्वारा प्राप्त होता है ।

(६) स्वर्ग और नरक आसमान पर हैं । स्वर्ग में अति सुख और नरक में अति दुःख मिलता है ।

(७) हज़रत ज़रथुस्त्र सच्चा पैग़ाम्बर है और अवेस्ता ईश्वरीय पुस्तक है । इन पर ईमान लाने वाले को ही स्वर्ग मिलेगा ।

(८) अहरमज़्दा ने संसार के कामों की देखभाल और प्रबन्ध करने के लिए बहुत से फरिश्ते नियत किये हुए हैं ।

(९) प्रलय या कयामत का दिन नियत है। प्रलय के पश्चात् सब मुर्दे किये जायेंगे और उनसे उनके कर्मों का हिसाब लिया जायेगा।

(१०) अग्नि का हर समय ध्यान रखने से अहरमज़्दा का ही ध्यान होता है। आतिश कदा (पारसियों का मन्दिर) में अग्नि को सदैव जलाये रखना चाहिये और उसमें सुगन्धित पदार्थ डालने चाहियें।

(११) कमर के चारों ओर कुसती (ऊन के धागे) को बांधने से अहरमज़्दा की सेवा होती है और उसकी आज्ञा का पालन होता है।

(१२) किसी की मृत्यु पर रोना-पीटना बुरा है। मरने के बाद पुनर्जन्म होता है। मरने के बाद तीन दिन तक अग्नि के प्रचण्ड रखने से अहरमज़्दा की आज्ञा का पालन होता है।

(१३) पवित्र विचारों, पवित्र शब्दों और पवित्र कार्यों से मनुष्य का जीवन उच्च होता है।

४

यहूदी मत (Judaism)

यहूदी मत को अंग्रेजी में जूडाइज़्म (Judaism) कहा जाता है। इसे मूसाई मत तथा इब्रानी मत के नाम से भी पुकारा जाता है। यहूदियों का विश्वास है कि यह मत जहुआ (ईश्वर) के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति के साथ-साथ ही प्रवर्तित किया गया था। ह० इब्राहीम, ह० इज़हाक, ह० याकूब आदि पैग़ाम्बर और नबी इसी मत को मानने वाले थे। साधारणतया विश्वास किया जाता है कि इसका आरम्भ मिश्र देश में हुआ और इसके प्रवर्तक ह० मूसा (Moses) थे जिनका स्थितिकाल ह० ईसा से १७१६ वर्ष पूर्व माना जाता है। इस प्रकार ह० मूसा आज से लगभग सैंतीस सौ वर्ष पूर्व विद्यमान थे। परन्तु यह स्थिति-काल संदिग्ध प्रतीत होता है, क्योंकि ह० मूसा का जन्म ह० जरथुस्त्र के बाद हुआ और उनका स्थितिकाल लगभग १००० वर्ष पूर्व माना जाता है।

यहाँ यह स्मर्तव्य है कि ईसाई लोग भी ह० इब्राहीम से लेकर ह० ईसा तक सभी पैग़ाम्बरों और नबियों का सम्मान करते हैं और कहते हैं कि वे सब उन्हीं सिद्धान्तों को मानने वाले थे जिनका प्रचार ह० ईसा ने किया था। मुसलमान भी ह० इब्राहीम से लेकर ह० मुहम्मद तक सभी पैग़ाम्बरों और नबियों का सम्मान करते हैं और कहते हैं कि उन्होंने उन्हीं सिद्धान्तों का प्रचार किया था जिनका बाद में हज़रत मुहम्मद ने किया। कुरआन में इन सबके जीवन और सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार ये सभी मत एक ही परम्परा से सम्बद्ध हैं और उत्तरोत्तर एक दूसरे से विकसित हुए हैं। उत्तर-वर्ती मतों ने पूर्ववर्ती मतों के सिद्धान्तों का अनुकरण किया है, परन्तु बाद में इनके एक दूसरे के साथ भयानक एवं अत्याचारपूर्ण धार्मिक युद्ध (Crusades) भी हुए जिनसे इतिहास तथा उनकी धार्मिक पुस्तकों के पृष्ठ भरे पड़े हैं। उन युद्धों का मुख्य कारण एक दूसरे के पैग़ाम्बर, रसूल या नबी को एवं ईश्वरीय पुस्तक को मानना या न मानना था। यहूदी तौरेत को ईश्वरीय पुस्तक तथा हज़रत मूसा को ईश्वर का पैग़ाम्बर मानते हैं, और जो ऐसा नहीं मानते उन्हें

वे काफिर समझते हैं। ईसाई बाईबल (New Testament) को ईश्वरीय पुस्तक स्वीकार करते हैं और हज़रत ईसा को ईश्वर का बेटा बताते हैं एवं ऐसा न मानने वालों को काफिर बताते हैं। मुसलमानों के मतानुसार कुरग्रान ईश्वरीय पुस्तक है तथा हज़रत मुहम्मद पैग़ाम्बर हैं और जो ऐसा नहीं मानते वे काफिर हैं। परन्तु तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि हज़रत मुहम्मद ने ईसा के सिद्धान्तों का और हज़रत ईसा ने हज़रत मूसा के सिद्धान्तों का अनुकरण किया है। स्वयं हज़रत मूसा के विचारों पर श्री ज़रतुश्त के सिद्धान्तों का प्रभाव लक्षित होता है। श्री पाल ब्रंटन पी. एच. डी. (Paul Brunton, Ph.D.) का अपनी पुस्तक 'दि इन्नर रियैलिटी' (The Inner Reality) में कहना है कि ओल्ड टैस्टामैंट (Old Testament) में Brok of Proverbs का एक पूरा अध्याय मिश्री सन्त एमीनीमोप (Amenemope) की पुस्तक से अक्षरशः ग्रहण (नकल) किया गया है। उनका यह भी कहना है कि हज़रत मूसा ने जिस धर्म का प्रचार किया वह ओसिरियों (Osiris) के धर्म की ही एक शाखा थी।[1]

वाईबल के अनुसार हज़रत मूसा (Moses) का जन्म मिस्र में हुआ। उनके माता-पिता यहूदी थे। उस समय मिस्र में बादशाह फेरो (Pharaoh) का शासन था। फेरो ने आदेश जारी किया कि यहूदी माता-पिता से उत्पन्न होने वाले सभी नर-शिशुओं का वध कर दिया जाए। इस आदेश के अनुसार हज़ारों यहूदी नर-शिशु मारे गये। ह० मूसा की माता ने अपने बच्चे को बचाने के लिए उसे नदी के किनारे पर झाड़ियों में डाल दिया। फेरो की बेटी वहाँ स्नान करने के लिए आई और उसने उठा लिया एवं उसकी देख-भाल के लिए उसी की माता को नौकर रख लिया। इस प्रकार उसका पालन-पोषण राज-प्रासाद में ही हुआ। बड़ा होने पर वह ह० इब्राहीम की कहानियों तथा यहूदियों के कष्टों से बड़ा प्रभावित हुआ। एक बार उसने देखा कि एक मिस्री एक यहूदी को बुरी तरह पीट रहा था। उसने क्रोध में आकर उस मिस्री को मार दिया और स्वयं मिस्र से भागकर रेगिस्तान में चला गया। धीरे-धीरे उसने यहूदियों को संगठित किया और उन्हें फेरो के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उभारा। उसने अपने आपको ईश्वर का पैग़ाम्बर घोषित किया और सिनाई पर्वत पर आश्रय-स्थान बनाया। उसके पश्चात् अपने अनुयायी यहूदियों के निवास के लिए कैनान (Canaan) को चुना। फेरो की मृत्यु के पश्चात् यहूदी मत का यथेष्ठ प्रचार हो गया।

1. The Inner Reality of the Mystery of Jesus, Page 273

तौरात (तौरेत) (Torat)

यहूदियों की ईश्वरीय पुस्तक को तौरात अथवा तौरेत कहते हैं। यहूदियों का विश्वास है कि ईश्वर ने बनिइस्राइल जाति के उद्धार के लिए मूसा को अपना पैग़म्बर चुना और उसे सीना पर्वत पर बुलाकर उपदेश दिया। ईश्वर ने जो-जो बातें कहीं वे सब मूसा ने लिख लीं। ये सब घटनाएँ और शिक्षाएँ तौरेत में संगृहीत हैं। तौरेत वस्तुतः ३९ पुस्तकों का संकलन है जिसे पुराना अहदनामा Old Testament or Hebrew Bible भी कहते हैं। यहूदियों के कथनानुसार इन पुस्तकों में वही आज्ञाएँ लिखी हुई हैं जो ईश्वर से हज़रत मूसा को प्राप्त हुई थीं। इनमें से पहली पाँच पुस्तकें पेण्टाट्यूक (Pentateuch) के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके नाम हैं—(१) उत्पत्ति (Genesis), (२) बहिर्गमन (Exodus), (३) अहबार (Leviticus), (४) संख्या (Number) और (५) इसतसना (Deuteronomy)। (१) उत्पत्ति (Genesis) में ईश्वर द्वारा छः दिन में सृष्टि के बनाने, आदम और हव्वा की उत्पत्ति, हज़रत नूह, इब्राहीम, याकूब, यूसुफ़, फिरऔन तथा बनिइस्राइल जाति का वर्णन है। (२) बहिर्गमन (Exodus) में फिरऔन बादशाह का इतिहास, हज़रत मूसा का जन्म, मिदियान देश में जाकर ह० मूसा का भेड़ बकरी चराने पर नौकर होना, होरब पर्वत पर ईश्वर से मिलना, मिश्र में वापिस लौटना और बनि-इस्राइल जाति को मिश्र से निकालना, फिरऔन को सेना समेत नदी में नष्ट करना, सीना पर्वत पर ईश्वर से मिलकर उसकी आज्ञाएँ प्राप्त करना आदि का निरूपण है। (३) अहबर (Leviticus) में ईश्वर का हज़रत मूसा से मिलकर मूर्तिपूजा करने से मना करना, हर प्रकार की कुरबानी (भेंट) की विधि समझाना, हलाल और हराम पशुओं का विस्तृत वर्णन करना, अन्य जातियों से व्यवहार, ईश्वर के मन्दिर बनाने की विधि, पुजारियों का सम्मान आदि का वर्णन है। (४) संख्या (Number) में हज़रत मूसा द्वारा अपनी जाति की जन-गणना कराना, अपनी जाति को अन्य जातियों के साथ युद्ध के लिए तैयार करना, दूसरी जातियों से युद्ध करके उनका राज्य छीनना, ईश्वर से सहायता प्राप्त करना, पुरुष-स्त्री, कँवारी और विवाहित लड़की तथा दासों और दासियों के साथ व्यवहार की बातें बताना, लूट के माल के विभाजन की विधि आदि का वर्णन किया गया है। और (५) इसतसना (Deuteronomy) में मूर्तिपूजा का विरोध, मूर्तिपूजकों से व्यवहार की विधि, तलाक देने और

पुनर्विवाह करने, सूद न लेने, खतना कराने, कर्तव्य और अकर्तव्य कार्यों, सदाचार की बातों आदि की चर्चा है।

इन पांचों पुस्तकों में पुनरावृत्ति बहुत है और बहुत सी बातों को बार-बार लिखा गया है। इनके बाद छटी पुस्तक है जो हज़रत दाऊद के नाम से है। इसे साम्ज़ (Psalms) अर्थात् धार्मिक गीत कहा जाता है। इसे ज़बूर भी कहते हैं। प्रसिद्ध है कि हज़रत मूसा की मृत्यु के पश्चात् बनिइस्राइल जाति की दशा फिर बिगड़ गई। वह पहले के समान फिर मूर्तिपूजा आदि करने लगी। यह देखकर ईश्वर ने हज़रत दाऊद को अपना पैग़ाम्बर चुना और उसे ज़बूर (Psalms) नामक पुस्तक दी। इसमें भी प्राय: वही बातें लिखी हुई हैं जो पहली पांच पुस्तकों में हैं। इन छ: पुस्तकों के बाद की ३३ पुस्तकों में अनेक अन्य व्यक्तियों का इतिहास और सदाचार सम्बन्धी बातें लिखी गई हैं। कई बाते बार-बार लिखी गई हैं।

सिद्धान्त

तौरेत में निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है:—

(१) ईश्वर (Yahweh-जहुआ) एक है। वह दयालु और कृपालु है। वही पूजनीय है। वह मनुष्यों के पापों को क्षमा करने वाला है, परन्तु वह बाप-दादा के पापों का दण्ड उनके पुत्रों और पोतों को भी दे देता है। वह अनन्त और अनादि एवं सर्वशक्तिमान् है। वह न्यायकारी है। वह अभाव से भाव की उत्पत्ति कर देता है और वही सृष्टि का संहार भी करता है। वह सर्वगुण-सम्पन्न है। वैसे तो वह सर्वत्र विद्यमान है, परन्तु उसका विशेष स्थान पवित्र हैकिल (देव-मन्दिर) है और उसका सिंहासन ऊपर आसमान पर है।

(२) ईश्वर की कोई मूर्ति नहीं है और किसी भी प्रकार की मूर्ति की पूजा करना उचित नहीं है।

(३) हज़रत मूसा (Moses) को ईश्वर का पैग़ाम्बर मानकर उस पर विश्वास करना अत्यन्त आवश्यक है।

(४) समस्त जीव जहुआ (ईश्वर) ने उत्पन्न किये हैं। मरने के बाद मनुष्य स्वर्ग या नरक (जन्नत या दोज़ख) में रहकर अनन्तकाल तक सुख या दु:ख भोगते रहेंगे। परन्तु जीव-जन्तुओं और पशु-पक्षियों के विषय में

कुछ प्रकाश नहीं डाला गया। प्रकृति के विषय में भी कुछ प्रकाश नहीं डाला गया है।

(५) तौरेत में आवागमन को स्वीकार नहीं किया गया है। हज़रत मूसा स्वर्ग (जन्नत) और नरक (दोज़ख़) में विश्वास रखते हैं और उसका अस्तित्व आकाश पर मानते हैं। जन्नत में सब प्रकार का सुख और दोज़ख में हर प्रकार का दुःख मिलता है। वे प्रलय को मानते हैं, परन्तु प्रलय के बाद सृष्टि की फिर से उत्पत्ति के होने या न होने के सम्बन्ध में मौन हैं, और न ही वर्तमान सृष्टि से पहले की किसी सृष्टि के सम्बन्ध में कुछ बताते हैं।

(६) हज़रत मूसा हिसाब के दिन (Day of Judgement) में विश्वास रखते हैं। उनका कहना है कि उस दिन मुर्दे जीवित होंगे और उन्हें स्वर्ग अथवा नरक में भेजा जायगा। वे जिन्न, भूत-प्रेत, शैतान और फरिश्तों की सत्ता भी स्वीकार करते हैं और रोज़ा, ज़कात, (दान-पुण्य), सरफ़ा, कुर्बानी (पशुओं का वध), तलाक़, पुनर्विवाह आदि में विश्वास रखते हैं।

(७) हज़रत मूसा ने सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम आदम और हव्वा (Adam & Eve) से स्वीकार की है। ईश्वर ने पहले दिन दिन और रात बनाया, दूसरे दिन फिज़ा (पवन) को बनाया और उसे पानी से पृथक् किया, तीसरे दिन आकाश के नीचे सागर और पृथ्वी की सृष्टि की, चौथे दिन चान्द, सूर्य, नक्षत्र आदि बनाए, पांचवें दिन जलजन्तुओं और पक्षियों को बनाया, छटे दिन पशुओं, कीड़ों-मकोड़ों, तथा मनुष्य को बनाया तथा सातवें दिन अर्थात् शनिवार को आराम किया।

(८) तौरेत में मुक्ति की प्राप्ति के निम्नलिखित साधन बताए गए हैं:— (क) ईश्वर पर विश्वास रखना और उसी को पूजनीय समझना, (ख) ईश्वर की मूर्ति न बनाना और न मूर्तिपूजा करना, (ग) तौरेत को ईश्वरीय पुस्तक मानकर तदनुसार कार्य करना, (घ) हज़रत मूसा को ईश्वर का पैग़ाम्बर मानना और उनपर ईमान लाना, (ङ) सिब्त के दिन (Sabbath day) अर्थात् शनिवार को सब कारोबार छोड़कर ईश्वर की पूजा-उपासना में ही दिन बिताना, (च) व्यभिचार आदि बुरे कार्यों से बचना और सत्कार्य करना, (छ) न्याय को स्थिर रखना और दीन-दुःखियों तथा अनाथों की सहायता करना, (ज) माता-पिता का

सम्मान करना, चोरी न करना और पड़ोसियों से अच्छा व्यवहार करना आदि।

तौरेत में प्रतिपादित ये सिद्धान्त अधिकतर आचार सम्बन्धी हैं। इनमें हिन्दू धर्म के समान ईश्वर, आत्मा, सृष्टि, जन्म-मृत्यु, कर्म-फल, मुक्ति आदि विषयों पर गम्भीर दार्शनिक दृष्टि से विवेचन नहीं किया गया है। हज़रत ईसा ने तथा हज़रत मुहम्मद ने भी प्रायः इन्हीं आचार-सम्बन्धी नियमों और सिद्धान्तों का अनुकरण एवं विवेचन किया।

५

जैन मत (Jainism)

जैनमत और बौद्धमत का प्रवर्तन ईसा से छटी-सातवीं शताब्दी पूर्व तत्कालीन आडम्बरपूर्ण, कर्मकाण्ड प्रधान और वर्णव्यवस्था के जटिल नियमों से आक्रान्त समाज के सुधार के रूप में हुआ। उस समय समाज में कर्मकाण्डी ब्राह्मणों का प्रभुत्व था। वे धर्म और समाज के नेता थे और जीवन-सम्बन्धी समस्त नियमों एवं मर्यादाओं को निर्धारित करते थे। वर्णव्यवस्था के नियम कठोर हो गये थे और यज्ञों में पशुबलि दी जाने लगी थी। वाह्याडम्बरों में विशेष रूप से वृद्धि हो गई थी। साधारण जनता का मार्ग अन्धकारमय हो गया था। उसके लिए न तो कर्मकाण्डी ब्राह्मणों का आडम्बरपूर्ण एवं पशुहिंसाप्रधान कर्मकाण्ड ही हितकर था और न उपनिषदों तथा दर्शनशास्त्रों का ज्ञानमार्ग ही। आडम्बरपूर्ण एवं पशुहिंसाप्रधान याज्ञिक कर्मकाण्ड निष्फल था और उपनिषदों तथा दर्शन-शास्त्रों का रहस्यमय चिन्तन जटिल एवं दुर्बोध था। आडम्बरपूर्ण और पशुहिंसाप्रधान यज्ञों के प्रति असन्तुष्ट होकर कुछ लोगों ने वैदिक धर्म के प्रति भी आस्था छोड़ दी। उन्होंने जीवन के रहस्य को नये प्रकार से उद्घाटित करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया और जीवन के तत्त्वों की नये ढंग से विवेचना आरम्भ कर दी। ऐसे लोगों को साधारणतया दो भागों में विभक्त किया जाता है—एक तो वे जो न तो वेदादि की मान्यता को ही स्वीकार करते थे और न ही व्यक्तिगत आचार की पवित्रता पर ही ध्यान देते थे। उनके मतानुसार "पापपुण्य का विचार केवल ढोंग है। आनन्द और भोग-विलास ही जीवन का मुख्य ध्येय है। इसलिए 'जब तक जीवन है सुख से जीना चाहिए'। शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु चार तत्त्वों से बना है। मृत्यु के अनन्तर ये चारों तत्त्व अपने व्यापक तत्त्वों में मिल जाते हैं और मनुष्य का सब कुछ समाप्त हो जाता है। शरीर से भिन्न आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है, अतः पुनर्जन्म का प्रश्न ही नहीं उठता। परलोक की अर्थात् स्वर्ग-नरक की कल्पना भी केवल मूर्खता है।" इस मत के अनुयायी चार्वाक कहलाते थे। चार्वाकों का यह मत पश्चिम के भौतिकतावाद से काफी मिलता जुलता है। दूसरा वर्ग उन

लोगों का था जो वेदों में आस्था तो नहीं रखते थे परन्तु व्यक्तिगत आचार, शुद्धि, शील और संयम को जीवन में विशेष महत्त्व देते थे। उन्होंने उपनिषदों के आधार पर नवीन दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना की एवं नैतिक तथा सामाजिक आदर्शों पर बल दिया। उन्होंने सांसारिक दुःखों से निवृत्ति तथा परम सुख की प्राप्ति का साधनापथ जनता को बड़ी भावुकता से और सरल तथा व्यावहारिक भाषा में समझाया। जनता को सरल, आचारयुक्त तथा भक्ति प्रधान धर्म की आवश्यकता थी। उसकी पूर्ति उन लोगों ने की। इस वर्ग के नेता थे वर्धमान महावीर और सिद्धार्थ गौतम बुद्ध। इनमें से पहले ने जैनमत का प्रचार किया और दूसरे ने बौद्धमत की स्थापना थी।

जन-मतावलम्बियों के अनुसार जैन मत के प्रचारक चौबीस तीर्थङ्कर थे जिन में से सब से पहले ऋषभदेव थे और अन्तिम वर्धमान महावीर थे। तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ थे जो महावीर जी से लगभग ढाई-सौ वर्ष पहले विद्यमान थे। उन्होंने ही जैन मत के प्रचार के लिए सर्वप्रथम संघ की स्थापना की थी और अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह के पालन का उपदेश दिया था। विवेचक विद्वान् पार्श्वनाथ को ही जैनमत का आद्य प्रवर्तक स्वीकार करते हैं। उनके पश्चात् महावीर जी ने जैन मत और जैन दर्शन की अन्तिम रूपरेखा निश्चित कर दी।

श्री महावीर जी का जन्म ईसा पूर्व ५९९ में वैशाली राज्य के अन्तर्गत कुण्ड ग्राम में हुआ। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ था और माता का त्रिशला देवी। सिद्धार्थ कुण्डग्राम के राजा थे और ज्ञातृक नामक क्षत्रिय कुल के मुखिया थे। उनका विवाह समरवीर नामक महासामन्त की पुत्री यशोदा के साथ हुआ। प्रियदर्शना नामक पुत्री भी उनके यहाँ उत्पन्न हुई। तीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने गृह-त्याग कर संन्यास ले लिया। जैन लोग उनके गृहत्याग को **'महाभिनिष्क्रमण'** कहते हैं। संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् साढ़े बारह वर्षों तक उन्होंने कठोर तपस्या थी और कैवल्य ज्योति का साक्षात्कार किया। उनकी कठोर तपस्या सफल हो गई और उनके हृदय कपाट खुल गये। उनकी अन्तरात्मा में ज्ञान का महास्रोत उमड़ पड़ा। जैनशास्त्रों की परिभाषा में अब वे **"केवली, अर्हन्, तीर्थङ्कर और जिन"** हो गये। उसके पश्चात् उन्होंने पैंतीस वर्ष तक पैदल घूम-घूमकर जैन मत का प्रचार किया। ईसा पूर्व ५२७ में ७२ वर्ष की आयु में पावापुरी में उनका देहावसान हो गया। उनके निर्वाण के समय

उनके अनुयायियों की संख्या लगभग पांच लाख हो चुकी थी।

जैनियों का धार्मिक साहित्य बहुत विशाल है, परन्तु उसमें सर्वोच्च स्थान सूत्रागमों (सुत्तागमे) का है।

सूत्रागम (सुत्तागमे)

जैनियों के अनुसार सूत्र, आगम और शास्त्र शब्द लगभग पर्यायवाचक हैं। इसीलिए इन ग्रन्थों को कई बार जैन सूत्र और जैनागम भी कहा जाता है। सूत्रागम संख्या में बत्तीस हैं—ग्यारह अंग,[1] बारह उपांग, चार छेद, चार मूल और आवश्यक।

(क) ग्यारह अंग

(एक्कारस अंगाइं) वैसे तो जैनमतावलम्वी सारे ही आगमों को अत्यन्त उपयोगी, सम्मान्य तथा ज्ञान के भण्डार स्वीकार करते हैं, परन्तु अंगों को वे अधिक पूज्य मानते हैं, क्योंकि उनमें तीर्थङ्करों के उपदेशों का संग्रह है। ग्यारह अंग निम्नलिखित हैं :—

(१) **आयारे (आचारांग)**—इसमें साधु-साध्वियों के आचार, भगवान् महावीर की परिषहसहिष्णुता, एषणा, पांच महाव्रतों और उनकी पच्चीस भावनाओं का वर्णन है।

(२) **सूयगडं (सूत्रकतांग)**—इसमें अन्य मतों का खण्डन करते हुए अपने मत का समर्थन किया गया है।

(३) **ठाणे (स्थानांग)**—इसमें एक से लेकर दस तक की संख्या की वस्तुओं का वर्णन है। नौवें ठाणे में श्रेणिध राजा का आगामी भव पर प्रकाश डाला गया है।

(४) **समवाए (समवायांग)**—इसमें एक से लेकर कोड़ा कोड़ी संख्या तक के विषय वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त द्वादशांगी स्वरूप भूत-भविष्यत्-वर्तमान त्रिषष्ठिशलाका पुरुषों के माता-पिताओं के नाम और उनके नाम, पूर्व जन्म और आगामी जन्म के नामों का वर्णन है।

---

१. मूल रूप में अंग बारह थे। इसीलिए उन्हें द्वादशाङ्ग कहा जाता है। परन्तु बारहवाँ अंग 'दृष्टिवाद' आजकल उपलब्ध नहीं है।

(५) **भगवई-विवाहपण्णत्ती (भगवती प्रज्ञप्ति)**—इसमें भगवान् गौतम द्वारा पूछे गये ३६००० प्रश्नों के उत्तर हैं। इसके अन्तर्गत रोहा, अणगार, स्कंदक, शिव राजर्षि, जमालि, उदायन, मृगावती, जयन्ती, सोमिल ब्राह्मण आदि के चरित्र भी हैं।

(६) **णायाधम्मकहाओ (ज्ञाताधर्मकथांग)**—इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले में उन्नीस शिक्षाप्रद रोचक कथाएँ हैं और दूसरे में शिथिलाचार द्वारा होने वाले दोषों को बताने वाली कथाएँ हैं।

(७) **उवासगदसाओ (उपासकदशांग)**—इसमें भगवान् महावीर के दस मुख्य श्रावकों का वर्णन है जिनमें आनन्द और कामदेव का मुख्य स्थान है।

(८) **अंतगउदसाओ (अंतकृतदशांग)**—इसमें गजसुकुमाल, रानी पद्मावती, अर्जुन माली आदि नव्वे महापुरुषों का चरित्र वर्णित किया गया है।

(९) **अनुत्तरोववाइयदसाओ (अनुत्तरोपपातिकदशांग)**—इसमें अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले महापुरुषों का वर्णन है।

(१०) **पण्हावागरणं (प्रश्न व्याकरण)**—इसके दो भाग हैं—आस्रवद्वार और संवरद्वार आस्रव द्वार में हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म और परिग्रह का स्वरूप समझाया गया है। संवर द्वार में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का तथा उनसे प्राप्त होने वाले फल का वर्णन है।

(११) **विवागसुयं (विपाक सूत्र)**—इसके भी दो भाग हैं—प्रथम श्रुतस्कन्ध और द्वितीय श्रुतस्कन्ध। प्रथम श्रुतस्कन्ध में दस जीवों का वर्णन है जिन्होंने असीम पाप कर महान् कष्ट उठाये। दूसरे श्रुतस्कन्ध में उन दस जीवों का वर्णन है जिन्होंने सुपात्र को दान देकर सुख प्राप्त किया।

(ख) बारह उपांग (बारस उवंगाइं)

(१) **ओववाइय सुत्तं (औपपत्तिक सूत्र)**—इसमें चम्पा नगरी, राजा कोणिक, रानी धारिणी, ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर का समवसारण; तप के १२ भेद; कोणिक के श्री महावीर के पास आगमन और स्तवन, असुरादि देवों और सिद्धों आदि का वर्णन है।

(२) **रायपसेणइयं (राजप्रश्नीय)**—इसमें सूर्यायदेव, गौतम स्वामी आदि के साथ महावीर स्वामी का वार्तालाप है।

(३) **जीवाजीवाभिगमे (जीवाजीवाभिगम)**—इसमें जीव-अजीव का विस्तृत

स्वरूप, विजयदेव का वर्णन और छप्पन अन्तरद्वीपादि का उल्लेख है।

(४) **पण्णवणासुत्तं (प्रज्ञापनासूत्रम्)**—इसमें जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष का निरूपण है। इसके अतिरिक्त इसमें समाधि लोकस्वरूप आदि का भी वर्णन है। इसमें ३६ पद अथवा प्रकरण हैं।

(५) **जंबूद्दीवपण्णत्ती (जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति)**—इसमें जंबूद्वीप का विस्तृत वर्णन है। कालचक्र, ऋषभदेव और भरत चक्रवर्ती के जीवन चरित्र हैं। विंटरनिट्ज़ के अनुसार यह भूगोलविषयक ग्रन्थ है।

(६-७) **चंदपण्णत्ती और सूरियपण्णत्ती (चंद्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति)**—इनमें चन्द्र और सूर्य आदि ज्योतिषचक्र का निरूपण है। इनमें सूर्य और चन्द्रमा के भ्रमण, प्रकाश्य क्षेत्र परिमाण, प्रकाश संस्थान, संवत्सरों का आदि अन्त, चन्द्रमा की वृद्धि-अपवृद्धि, ज्योत्स्ना प्रमाण, ज्योत्स्ना लक्षण, सूर्य चन्द्रमा आदि की दूरी, योग स्वरूप आदि का वर्णन है। विंटरनिट्ज़ के अनुसार ये दोनों ग्रन्थ खगोल विषयक हैं।

(८) **णिरियावलियाओ (निरियावलिका)**—इसमें श्रेणिक राजा भंभसार (बौद्ध साहित्य में बिंबिसार) के (कोणिक अजातशत्रु) द्वारा वध, कालकुमारादि के अपने नाना वैशाली नरेश चेटक के साथ युद्ध और मरण, उनके नरक में जाने और भविष्य में मोक्ष प्राप्ति आदि का वर्णन है।

(९) **कप्पवडिंसियाओ** (कल्पावतंसिका)—इसमें दस अध्ययन (अध्याय) हैं जिनमें श्रेणिक दीक्षा ग्रहण करने, देवगति की उपलब्धि तथा भविष्य में मोक्ष प्राप्ति आदि का वर्णन है।

(१०) **पुप्फियाओ (पुष्पिका)**—इसमें दस देवों और देवियों के महावीर स्वामी की वन्दना के लिए आने, गौतम स्वामी द्वारा पूछने पर उनके पूर्वजन्मों के वृत्तान्त बताने का वर्णन है। वे दस देव और देवियाँ हैं—चन्द्र, सूर्य, महाशुक्र, बहुपुत्तिया, पूर्णभद्र, मणिभद्र, बल, शिव और अनादित।

(११) **पुप्फचूलियाओ** (पुष्पचूलिका)—इसमें भी दस अध्ययन हैं और श्री, ह्वी आदि दस देवियों के पूर्वजन्म का वर्णन है।

(१२) **वण्हिदसाओ** (वृष्णिदशा)—इसमें वृष्णिवंश के बलभद्र के बारह पुत्रों निषढकुमार आदि के भगवान् अरिष्टिनेमि से दीक्षाग्रहण करने और भविष्य में मोक्ष के अधिकारी बनने का निरूपण है।

(ग) चार छेदसूत्र (चउछेयसुत्ताइं)

(१) **ववहारो (व्यवहार सूत्र)**—इसमें दस (उद्देसओ) उद्देशक हैं। पहले में आलोचना (Confession) विधि बताई गई है। दूसरे में सहधर्मी के दूषित होने पर साधु के कर्तव्य लिखे गये हैं। तीसरे में आचार्य और उपाध्याय के गुणों का उल्लेख किया गया है। चौथे में यह बताया गया है कि चतुर्मास और विहारकाल में आचार्य आदि को अपने साथ कितने साधु रखने चाहियें। पांचवें में चौथे के अनुसार ही प्रवर्तनी के लिए विधान बताये गये हैं। छटे में भिक्षा, शौचभूमि तथा स्खलनाओं के लिए प्रायश्चित बताये गये हैं। सातवें में साध्वियों के लिए नियमों, स्वाध्याय, पदवी दान तथा विशेष अवस्थाओं में गृहस्थ-प्रवेश आदि का उल्लेख है। आठवें में गृहस्थ के लिए अपेक्षित मकान, पीठफलक, पात्रों, भोजन के परिमाण आदि का विवरण है। नवमें में मकान देने, मकान को उपयोग में लाने अथवा न लाने, भिक्षु प्रतिमा के आराधन की विधि आदि के सम्बन्ध में बताया गया है। दसवें में दो प्रकार की प्रतिमा (अभिग्रह); दो प्रकार के परिषह; पाँच प्रकार के व्यवहार; चार प्रकार के साधु पुरुषों; आचार्य और शिष्य, स्थविर और शिष्य की तीन प्रकार की भूमिकाओं आदि का वर्णन है।

(२) **बिहक्कप्पसुत्तं (बृहत्कल्पसूत्र)**—इसमें छः उद्देसओ (उद्देशक) हैं और मुख्यतया साधु-साध्वियों के निर्धारित आचार-व्यवहार का तथा साधना के लिए अपेक्षित स्थान, वस्त्रों पात्रों आदि का वर्णन है। विविध दोषों के लिए प्रायश्चित भी बताये गये हैं।

(३) **णिसीहसुत्तं (निशीथ सूत्र)**—इसमें बीस उद्देशक हैं। १९ उद्देशकों में गुरुमासिक, लघुमासिक, लघुचातुर्मासिक और गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्तों का निरूपण है और बीसवें उद्देशक में उनकी विधि बताई गई है। एक प्रकार से निशीथसूत्र जैनधर्म के नियमों का कोष अथवा दण्ड-संग्रह है।

(४) **दसासुयक्खंधो (दशाश्रुतस्कंध)**—इसमें दस अध्ययन अथवा अध्याय हैं और विविध प्रकार के दोषों, आचार्य की सम्पदाओं, शिष्यों के लिए चार प्रकार की विनय प्रवृत्ति, चित्त समाधि, श्रावकों और साधुओं की प्रतिमाओं आदि का वर्णन है।

(घ) चार मूल सूत्र (चत्तारि मूल सुत्ताइं)

(१) **दसवेयालियसुत्तं (दशवैकालिक)**—इसमें दस अध्ययन और दो चूलिकाएं हैं जिनमें क्रमशः धर्म की प्रशंसा और साधु की भ्रमर-जीवन के साथ तुलना; चित्तस्थिरीकरण के उपाय; साधु के ५२ अनाचीर्ण; षड्जीव-निकाय का स्वरूप; भिक्षाविधि; भिक्षाकाल; साधु के १८ कल्प; वचनशुद्धि; साधु के आचार; विनय का स्वरूप; तप, आचार और समाधि; भिक्षु के गुण; संयम के लिए अपेक्षित बातें; साधुओं के आचार-व्यवहार; मोक्षप्राप्ति के उपाय आदि बताये गये हैं।

(२) **उत्तरज्झयणसुत्तं (उत्तराध्ययन सूत्र)**—जैन लोग इस सूत्र का अत्यधिक पाठ करते हैं। इसमें छत्तीस अध्ययन (अज्झयणं) हैं जिनमें क्रमशः विनय; परिषहों को सहन करने का उपदेश; मनुष्यत्व, धर्मश्रवण, श्रद्धा और संयम; जीवन की क्षणभंगुरता और प्रमाद-अप्रमाद का स्वरूप; अकाम मरण और सकाम मरण; साधु पुरुषों का आचार; कामी पुरुषों की बकरे के साथ तुलना; लोभ, तृष्णा आदि दुर्गुणों के त्याग का उपदेश; नेमिराज की दीक्षा और इन्द्र के साथ प्रश्नोत्तर; मानवजीवन की नश्वरता, समयमात्र का भी प्रमाद न करने की शिक्षा; शिक्षा-अशिक्षा, विनय-अविनय आदि की उपमाएँ; हरिकेशीबल मुनि का चरित्र, तप की महत्ता, जातिवाद का खण्डन, भावयज्ञ और आध्यात्मिक स्नान का स्वरूप; चित्त संभूति और ब्रह्मदत्त की कथा; छः जीवों के पूर्वजन्म की कथा, इषुकार राजा और कमलावती रानी का वैराग्य और दीक्षाग्रहण; भिक्षु के लक्षण और गुण; ब्रह्मचर्य के दस असमाधि स्थान; पाप श्रमण का स्वरूप; संयति राजा का गर्दभालि मुनि से दीक्षा-ग्रहण; राजकुमार मृगापुत्र का संयम ग्रहण और मोक्ष-प्राप्ति; श्रेणिक नरेश का अनाथी मुनि से धर्म में दृढ़ श्रद्धा प्राप्त करना; वध्य चोर को देख कर समुद्रपाल की संवेद प्राप्ति, दीक्षाग्रहण और मोक्षप्राप्ति; अरिष्टनेमि का दीक्षाग्रहण और सती राजीमती के उपदेश से रथनेमि की संयम में स्थिरता और मोक्षप्राप्ति; मुनि केशी-कुमार और गौतम स्वामी का संवाद तथा केशीकुमार द्वारा महावीर स्वामी के पांच महाव्रतों की स्वीकृति; समितियों और गुप्तियों का वर्णन; जयघोष का चरित्र, ब्राह्मण के यथार्थ लक्षण; सामाचारी और

साधु की दिन रात्रिचर्या; गर्गाचार्य द्वारा अविनीत शिष्यों का त्याग; मोक्षमार्ग के उपाय; सम्यक्त्व पराक्रम; वाह्य और आभ्यन्तर तप; चरण विधि; प्रमाद स्थान और उनसे बचने के उपाय; आठ कर्म; छहों लेश्याओं के नाम, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण आदि; साधु के गुण; जीव और अजीव का भेद आदि प्रतिपादित किये गये हैं।

(३) **णंदीसुत्तं (नन्दीसूत्र)**—इसमें संघ-स्तुति, तीर्थङ्कर गणधरादि, परिषद्, पांच प्रकार के ज्ञान के स्वरूप का वर्णन है।

(४) **अणुओगदारसुत्तं (अनुयोग द्वार सूत्र)**—इसमें आवश्यक, श्रुतस्कन्ध के निक्षेप, उपक्रम, आनुपूर्वी, दश नाम, प्रमाण, अनुगम, नय आदि का उल्लेख है। इसमें सात स्वरों, आठ विभक्तियों और नौ रसों का भी वर्णन है।

(ङ) आवस्सयसुत्तं (आवश्यक सूत्र)

इसमें सामयिक, चतुर्विंशति स्तव, वंदनक, प्रतिक्रमण, कार्योत्सर्ग और प्रत्याख्यान नामक आवश्यकों का निरूपण है।

इनके अतिरिक्त तीन परिशिष्ट भी हैं—(१) दसासुयक्खं धस्स अट्ठम-मज्झयणं अहवा कप्पसुत्तं (दशाश्रुत स्कंधस्याष्टममध्ययम् अथवा कल्पसूत्रम्), (२) सावयावस्सए सामाइयसुत्तं (श्रावकावश्मके सामायिक सूत्रम्) और (३) सावयावस्सए पडिक्कमण सुत्तं (श्रावकावश्यके प्रतिक्रमणसूत्रम्)।

सूत्रागम (सुत्तागमे) के इस संक्षिप्त परिचय से ज्ञात होता है कि ग्यारह अंगों, बारह उपांगों में, चार छेदसूत्रों, चार मूल सूत्रों और आवश्यक में जैन तीर्थङ्करों एवं अन्य जैन आचार्यों, गणधरों एवं जैनमुनियों के उपदेश हैं और उनकी पुष्टि के लिए तत्कालीन राजाओं और रानियों के, पूर्वकालीन ऐतिहासिक एवं पौराणिक धर्मावलम्बियों के तथा महावीर स्वामी एवं अन्य जैनाचार्यों से दीक्षा ग्रहण करने वाले व्यक्तियों के उदाहरण और जीवन वृत्तान्त हैं। इन सभी सूत्रों अथवा आगमों की रचना महावीर स्वामी के बाद हुई। श्री पुप्फभिक्खू (पुष्पभिक्षु) द्वारा सम्पादित सुत्तागमे (दो भाग) की भूमिका में कुछ सूत्रागमों के रचयिताओं के नामों का निर्देश किया गया है। बारह अंगों की रचना महावीर स्वामी के पश्चात् उनके पांचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी ने अर्धमागधी में की। पण्णवणासुत्तं (प्रज्ञापनासूत्र) का संकलन महावीर स्वामी

के निर्वाण के ३३५ वर्ष पश्चात् और श्री सुधर्मा स्वामी से तेईसवें पट्टस्थित श्री श्यामाचार्य ने किया। ववहारो (व्यवहार), विहक्कप्पसुत्तं (बृहत्कल्प) और दसासुयक्खंधो (दशाश्रुतस्कंध) की रचना आचार्य भद्रबाहु ने की। दसवेयालियसुत्तं (दशवैकालिक सूत्र) की रचना श्री शय्यंभवाचार्य ने अपने शिष्य (पुत्र) मनाक्प्रिय के लिए पूर्व रचित अंगों और उपांगों से पाठ उद्धृत करके की। अणुओगदारसुत्तं (अनुयोग द्वार सूत्र) की रचना रक्षिताचार्य ने की।

दिगम्बरों का कहना है कि द्वादश अङ्ग विच्छिन्न हो चुके हैं और आचार्य सुधर्मा स्वामी की रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं। परन्तु श्वेताम्बर केवल बारहवें अंग 'दृष्टिवाद' का विच्छेद हुआ है, शेष सभी सूत्र यथावत् चले आ रहे हैं। हां, उनमें जो प्रक्षेप और भाषाभेद हो गया है उससे इन्कार नहीं किया जा सकता। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि सूत्रों की रचना उस समय की जनसाधारण की बोलचाल की भाषा में की गई थी, इसलिए जैनमुनि और प्रचारक लोगों को समझाने के लिए लोकभाषा में यथावश्यक परिवर्तन कर लेते थे। दूसरा कारण यह था कि महावीर स्वामी के निर्वाण के लगभग दो सौ वर्ष पश्चात् ईसा पूर्व ३१० में चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य काल में मगध में बारह वर्षों तक भयानक दुर्भिक्ष पड़ा था। तब जैन मुनियों को संयम निभाने के लिए दक्षिण भारत में जाना पड़ा और सूत्रों का परावर्तन न कर सकने के कारण वे उन्हें भूल से गये। उसके बाद पाटलीपुत्र में संघ एकत्र हुआ और जिसे जितना याद था उसे सुनकर ग्यारह अंगों का फिर से संकलन किया गया। सूत्रों की अर्धमागधी पर जो महाराष्ट्री का प्रभाव दिखाई देता है उसका कारण भी यही है। सम्भवतः श्री सुधर्मा स्वामी द्वारा रचित अंगों के विषय-संकलन-क्रम पर भी प्रभाव पड़ा हो और उसमें कुछ अन्तर पड़ गया हो। पाटलीपुत्र संघ से लगभग आठ सौ वर्ष पश्चात् थोड़े-थोड़े अन्तर से मथुरा और वल्लभी में आगमों को पुस्तकारूढ़ करने के लिए जैनमुनियों के सम्मेलन हुए। वल्लभी में सम्मेलन वीर संवत् ९८० तदनुसार विक्रमी संवत् ५११ तदनुसार ईसवी सन् ४५४ में हुआ। उसके अध्यक्ष आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण थे। उस सम्मेलन में एकत्रित मुनियों से, जिसे जितना याद था, सुनकर पुस्तक रूप में संकलन तैयार किया गया। यही कारण है कि बहुत से जैनाचार्य वर्तमान उपलब्ध आगमों का संकलयिता देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को ही स्वीकार करते हैं।

प्राचीन और मध्यकालीन जैनमुनियों ने सूत्रों (आगमों) दिव्य ग्रन्थ अथवा ईश्वरीय ग्रन्थ होने का दावा नहीं किया। परन्तु उन्होंने अर्धमागधी भाषा को जिसमें महावीर स्वामी उपदेश करते थे दैवी भाषा स्वीकार किया है, और उसे आर्यभाषा कहा है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'प्राकृत व्याकरण' में उसे 'आर्य प्राकृत' कह कर पुकारा है। उनके अनुसार अर्धमागधी, ऋषिभाषिता और आर्य तीनों एक ही बात है। जैनाचार्यों का विश्वास है कि जब ज्ञातपुत्र महावीर स्वामी अर्धमागधी भाषा में उपदेश करते थे तो उनकी भाषा सभी जीवों की अपनी-अपनी भाषा में परिणत होती थी। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि महावीर स्वामी द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली अर्धमागधी प्राकृत को सभी प्राणी, मनुष्य और पशु-पक्षी समझते थे। परन्तु जैसा कि पहले संकेत किया गया है, आगमों में प्रयुक्त अर्धमागधी प्रकृत पर महाराष्ट्री प्राकृत का प्रभाव है। डॉक्टर जैकोबी ने तो उसे अर्धमागधी न मानकर 'जैन महाराष्ट्री' नाम दिया है। आचार्य हेमचन्द्र ने महाराष्ट्री प्राकृत को आर्ष प्राकृत अर्धमागधी का अर्वाचीन रूप बताया है। इससे यह समझा जा सकता है कि अर्धमागधी पर महाराष्ट्री का प्रभाव है।

जैन-आगमों के सिद्धान्त

(१) जगत् अनादि और अनन्त है। यह अपने आप चलता रहा है, चल रहा है और चलता रहेगा।[१]

(२) ईश्वर संसार का कर्ता अथवा हर्ता नहीं है। समस्त कर्म क्षय हो जाने पर आत्मा ही ईश्वर अवस्था को प्राप्त हो जाता है। **"परिक्षीणसकल धर्मा ईश्वरः"**। महावीर स्वामी का कहना है—**"अप्पा सो परमप्पा"**।

(३) संसार में जो कुछ भी है वह द्रव्य है और उसके दो भेद हैं—जीव और अजीव (चेतन और जड़)। जीव अनादि और अनन्त है। वह रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि से रहित है, परन्तु वह ही कर्म का कर्ता और फल का भोक्ता है प्रत्येक जीव स्वतन्त्र है और देहबन्धन से छूटने पर ईश्वर बन जाता है। श्री महावीर स्वामी कहते हैं—**"अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहान य"** अर्थात् आत्मा सुख और दुःख का स्वयं कर्ता है।

---

१. **सएहिं परियाएहिं, लोयं बूया कडेति य।**
तत्तं ते ण विजाणंति, ण विणासी कया इव॥ (सूत्रकृतांग १-१-३-९)

(४) जीव के साथ कर्मों का संयोग रहने से उसे बार-बार शरीर धारण करना पड़ता है। चेतनस्वरूप होने के कारण जीव की स्वाभाविक गति उन्नति करने की है। वह अपने शुद्ध स्वरूप को जान कर ही मुक्ति का उपाय कर सकता है। मुक्ति का मुख्य साधन कैवल्य ज्ञान है। कैवल्य का अर्थ है जीव का अपने स्वरूप में स्थित होना। इसके तीन साधन हैं—**सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र।** जन धर्म इन्हें रत्नत्रय कहता है। इनके द्वारा जीव कर्मबन्धन से मुक्त होकर अपने स्वरूप में स्थिर होता है। मुक्त जीव जिन या अर्हत् कहलाता है।

(५) अजीव (जड़) के पांच भेद हैं—काल, आकाश, धर्म, अधर्म और पुद्गल। काल समय का नाम है। आकाश में सब अवकाश पाते हैं। धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (**धम्मो मंगलमुक्किट्ठं**) वह सब प्रकार की गति का कारण है। वह स्वयं गतिहीन है, परन्तु उसके बिना किसी पदार्थ में गति नहीं हो सकती। अधर्म धर्म का प्रतिलोम है इससे सब पदार्थों में स्थिरता आती है। पुद्गल परमाणु को कहते हैं। वे जड़ हैं परन्तु पृथ्वी, जल, वायु आदि की सृष्टि उन्हीं (पुद्गलों) से ही होती है। कर्मों का सूक्ष्म रूप पुद्गल है। अपने शुद्ध स्वरूप में पुद्गल अनादि, अनन्त, नित्य और अमूर्त हैं। पौद्गलिक भार के टूट जाने पर ही जीव पुनः अपने स्वरूप में अवस्थित हो सकता है और कैवल्य को प्राप्त कर सकता है।

(६) जीव और अजीव की छः विशेषताएं हैं—(१) आस्रव (मन, वचन तथा शरीर का व्यापार और शुभाशुभ बन्धन का हेतु), (२) बन्धसंबर (आस्रव का प्रतियोगी), (३) निर्जरा (धर्मबन्धन का क्षय), (४) मोक्ष (जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति), (५) पाप (चेतना का लोप करने वाले कर्म जो दुःख के कारण हैं) और (६) पुण्य (सांसारिक सुख के साधन भूत कर्म)।

(७) ज्ञान पांच प्रकार का होता है—मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यव और केवल। इनमें से केवल ज्ञान मुक्त होने वाले जीवों को ही होता है। उसे पाने के लिए संसार और उसके सारे कर्मों का परित्याग आवश्यक है।

(८) सांसारिक कर्मों और बन्धनों से छूटने के लिए पांच अणुव्रतों का पालन

करना आवश्यक है। पांच अणुव्रत है—(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अपरिग्रह, (४) अस्तेय और (५) ब्रह्मचर्य। अहिंसा सबसे अधिक आवश्यक धर्म है। श्री महावीर स्वामी धर्म का अर्थ ही अहिंसा मानते हैं। उनका कहना है—**"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा, संयमो तवो"**।[१] अहिंसा तीन प्रकार की होती है—शारीरिक, वाचिक और मानसिक। मन से दूसरों का अनिष्टचिन्तन करना भी हिंसा है। हिंसा चार प्रकार की हो सकती है, जैसे आनुषंगिक, व्यावसायिक, आत्म-रक्षणात्मक और इच्छापूर्वक। संन्यासियों को सब प्रकार की हिंसा से दूर रहना चाहिये और गृहस्थियों को इच्छापूर्वक हिंसा से अलग रहना चाहिये। अहिंसा के बाद दूसरा मुख्य तत्त्व सत्व है। श्री महावीर स्वामी के कथनानुसार "सत्य ही लोक में सारभूत है जो समुद्र से भी अधिक गम्भीर है। जो विद्वान् सत्य मार्ग पर चलता है, वह संसार-सागर को पार कर जाता है। सत्य में दृढ़ रहने वाला सब पापों को नष्ट कर डालता है"।[२] तीसरा मुख्य तत्व है अपरिग्रह, 'क्योंकि परिग्रह से बढ़ कर और कोई दूसरा बन्धन नहीं है। महावीर स्वामी का कहना है—**"नत्थि एरिसो पासो, पडिबंधो अत्थि सव्व जीवाणं।"** चौथा और पाँचवाँ तत्त्व हैं अस्तेय और ब्रह्मचर्य। महावीर स्वामी का कहना है कि "अब्रह्मचर्य अधर्म का मूल है, महादोषों का स्थान है" (**मूलमेयमहम्मस्स महादोस समुस्सयं**)।

(६) जैनधर्म कर्मप्रधान धर्म है और **'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः'** कह कर ज्ञान और क्रिया दोनों को मोक्ष का साधन मानता है। **"जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा" (ये कर्मणि शूरास्ते धर्मे शूराः)** कह कर जैनागमों में कर्मशूरों को ही धर्मशूर बताया गया है। महावीर स्वामी मन की जीत को ही वास्तविक जीत मानते हैं और बाहरी युद्धों का निषेध करते हैं। **"अप्पणामेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ। अप्पाणमेव अप्पाणं,**

---

१. दशवैकालिक १-१।

२. **"सच्चं लोगम्मि सारभूयं, गभीरतटं महासमुद्दाओ"** (प्रश्नव्याकरण)
"सच्चस्स आसाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ' (आचारांग, ३-२-१२)
"सच्चम्मि धिइं धुव्विहा, एत्थोवरए मेहावी सव्वं पावं झोसइ" (आचारांग, ३-२-५)

जहत्ता सुहमेहए" । मन की जीत के लिए आत्म-दमन अत्यन्त आवश्यक है—"**अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो । अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य ।**" आत्मदमन के लिए जैनधर्म व्रत, उपवास, तप आदि पर बहुत जोर देता है ।

(१०) जैनधर्म का दार्शनिक सिद्धान्त '**स्याद्वाद**' कहलाता है । कुछ बौद्ध भी स्याद्वादी हैं । '**स्याद्वाद**' को '**अनेधान्तवाद**' अथवा '**अपेक्षावाद**' भी कहा जाता है । '**स्याद्वाद**' अथवा '**अनेकान्तवाद**' का अभिप्राय है "एक ही पदार्थ में नित्यत्व और अनित्यत्व, सादृश्य और विरूपता, सत्त्व और असत्त्व आदि परस्पर विभिन्न धर्मों की सापेक्ष स्वीकृति" । इससे यह सिद्ध किया जाता है कि प्रत्येक कथन में आंशिक सत्य है और सम्पूर्ण सत्य को जानने के लिए सभी विभिन्न दृष्टिकोणों का अध्ययन आवश्यक है, सत्य के विभिन्न पहलुओं का समन्वय आवश्यक है" । जैनसूत्रों में लिखा है—"**स्यादस्तिः, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति नास्ति, स्यादवक्तव्यः, यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्यः, नास्ति अवक्तव्यः**" । अर्थात् "कदाचित् वह है, कदाचित् वह नहीं है कदाचित् वह है और नहीं है, कदाचित् वह अकथनीय है, कदाचित् वह अकथनीय नहीं है, कदाचित् वह अकथनीय है औरनहीं है ।"

'**स्याद्वाद**' '**सर्वास्तिवाद**' और '**सर्वनास्तिवाद**' के बीच सुन्दर समन्वय है । दार्शनिक क्षेत्र में महावीर स्वामी की यह महत्त्वपूर्ण देन है । परन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि महावीर स्वामी के विचारों पर वेदमन्त्रों, उपनिषदों, गीता, महाभारत आदि का प्रभाव है । कहीं-कहीं तो उनके वचन इन ग्रन्थों के भावानुवाद, छायानुवाद एवं शब्दानुवाद प्रतीत होते हैं । उदाहरणार्थ जैसे—

१—"**मित्ती मे सव्वभूएसु ।**"	१—"**मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।**" (यजु० ३६।१८)
२—"**तक्का जत्थ ण विज्जई, भई तत्थ ण गाहिया ।**"	२—"**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।**" (तैत्तिरीयोपनिषद्)

३—"एगं जाणइ से सव्वं जाणइ ।"	३—"आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति ।"
४—"अप्पा सो परमप्पा ।"	४—"अयमात्मा ब्रह्म ।" (वृहदारण्यकोपनिषद्)
५—"अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।"	५—"उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।" (गीता ६।५)
६—"अप्पा मित्तममित्तं च, दुपठ्ठिय-सुपठ्ठओ ।"	६—"आत्मैवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।" (गीता ६।५)
७—"परिणामे बंधो, परिणामे मोक्खो ।"	७—"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।" (गीता ६।५)
८—"सासए लोए दव्वट्ठा याए ।"	८—"प्रकृतिः पुरुषश्चैव, उभयैते शाश्वते मते ॥" (गीता६।५)
९—"सुत्तेसु यावि पडिबुद्धजीवी, नो वीससे पंडिय आसुपण्णे । घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंडपक्खीव चरेऽप्पमत्तो ।" (उत्तराध्ययनम्, अ० ४)	९—"या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी । यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः ।" (गीता २/६९)
१०—"सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो णत्थि किंचणं । मिहिलाए उज्झमाणीए, न मे उज्झइ किंचणे ॥" (उत्तराध्ययनम्, अ० ९)	१०—"ससुखं बत जीवामि, यस्य मे नास्ति किंचन । मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किंचन ॥" (महाभारत शां०, अ० २६)
११—"पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह । पडिपुण्णं णालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे ।" (उत्तराध्ययनम्, अ० ९)	११—"यत्पृथिव्यां व्रीहिर्यवं हिरायं पशवः स्त्रियः । सवं तं नालमेकस्य तस्माद्विद्वाञ्छमं चरेत् ॥" (महाभारत अनु० अ० ९३)

इसी प्रकार के बीसियों पद उद्धृत किये जा सकते हैं ।

बुद्धमत (Buddhism)

जैसा कि पिछले प्रकरण में बताया जा चुका है, जैनमत के समान बौद्धमत का प्रवर्तन भी छटी-सातवीं शताब्दी ईसापूर्व तत्कालीन आडम्बरपूर्ण और पशुहिंसा-प्रधान याज्ञिक कर्मकाण्ड की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। इसके प्रवर्तक थे सिद्धार्थ गौतम बुद्ध, जो भगवान् बुद्ध कह कर पुकारे जाते हैं। भारतीय तत्त्वज्ञों और समाज सुधारकों में भगवान् बुद्ध का स्थान बहुत ऊँचा है। महावीर स्वामी के समान भगवान् बुद्ध का जन्म भी एक राजकीय परिवार में हुआ और उन्होंने भी समाज-सेवा तथा धर्म-प्रचार के लिए राजकीय जीवन का परित्याग करके संन्यास ग्रहण किया।

भगवान् गौतम बुद्ध का जन्म लुम्बिनी नामक स्थान पर ईसापूर्व ५६३ में हुआ।[1] उनके पिता कपिलवस्तु के शाक्यवंशीय राजा शुद्धोधन थे और उनकी माता मायादेवी अथवा महामाया थी जो कोलियवंश की राजकुमारी थी। उनका नाम सिद्धार्थ रखा गया। गौतम गोत्र में उत्पन्न होने के कारण उन्हें गौतम कहा जाता है। वे बचपन से ही गम्भीर और चिन्तनशील स्वभाव के थे। उनका विवाह यशोधरा नामक राजकुमारी के साथ हुआ और कुछ समय के पश्चात् उनके यहाँ राहुल नामक बेटा भी उत्पन्न हुआ। परन्तु पत्नी और पुत्र उनकी चिन्तनशीलता और वैराग्य भावना को कम न कर सके। अट्ठाईस वर्ष की आयु में उन्होंने एक रात चुपके से घर छोड़ दिया और संन्यास ग्रहण कर लिया। कुछ समय तक तपस्वियों और विद्वानों के पास रह कर शिक्षा ग्रहण की और फिर छः वर्ष तक कठोर तपस्या की। अन्त में वैशाख पूर्णमाशी की रात को उन्हें उद्बोधन हुआ और उन्होंने अपने आपको बुद्ध उद्घोषित किया। उनकी इस अद्भुत विजय के कारण उन्हें शाक्यसिंह, तथागत, मारविजयी, जिन आदि नामों से भी पुकारा जाता है। बुद्ध बनने के पश्चात् उन्होंने धर्मचक्र (धम्मचक्क) का प्रवर्तन आरम्भ किया और पैंतालीस वर्ष तक घूम-घूम कर

---

१. लंकावासी बौद्धों की परम्परा के अनुसार भगवान् बुद्ध का जन्म ६२४ ई० पू० में हुआ था।

अपने मत का प्रचार करते रहे। अन्त में ४८३ पू० ई० में अस्सी वर्ष की अवस्था में कुसीनारा (कुशीनगर) में उनका देहान्त हो गया। बौद्ध उनके, शरीर-त्याग को महापरिनिर्वाण कहते हैं। बुद्ध के जीवन-काल में ही मगध, कौशल, कौशाम्बी आदि राज्यों में बौद्ध धर्म का प्रचार हो गया था और शाक्य, वज्जी, मल्ल आदि जातियों ने बौद्ध मत को स्वीकार कर लिया था।

महात्मा गौतम बुद्ध ने अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए स्वयं किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की। उनके शिष्य उनके वचनों को कण्ठस्थ कर लेते थे। परन्तु उनके निर्वाण के पश्चात् बौद्ध संघ में उनकी शिक्षाओं के सम्बन्ध में विवाद खड़ा हो गया। इसलिए उस विवाद को दूर करने के लिए भगवान् बुद्ध के शिष्य महाकस्सप (महाकाश्यप) ने राजगृह के निकट सत्तपण्णी गुहा में बौद्ध सभा आमन्त्रित की जिसमें पाँच सौ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। उस सभा में महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों और वचनों को संकलित करके लिपिबद्ध किया गया और उन्हें दो पिटकों (भागों) में विभक्त किया गया—(१) विनय पिटक और (२) धम्म पिटक। विनय पिटक में बौद्ध भिक्षुओं के लिए नियम थे और धम्मपिटक में बुद्ध के सिद्धान्त थे। इस सभा के लगभग सौ वर्ष पश्चात् ३८७ पू० ई० में वैशाली में दूसरी बौद्ध महासभा बुलाई गई, क्योंकि वैशाली के भिक्षुओं ने कुछ ऐसे नियम बना लिए थे जो विनयपिटक के विरुद्ध थे। इस सभा में समस्त संघों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए, परन्तु कुछ निर्णय न हो सका। बौद्ध भिक्षु दो दलों में विभक्त हो गये—थेर (स्थविर) और महासंघिक। जो विनयपिटक में विश्वास रखते थे वे थेर अथवा स्थविर कहलाने लगे और जो सुधारवादी थे वे महासंघिक कहलाने लगे। सम्राट् अशोक के शासनकाल में २५१ पू० ई० में महात्मा बुद्ध के निर्वाण के २३६ वर्ष पश्चात् मोग्गलीपुत्त तिस्स की अध्यक्षता में तीसरी बौद्ध सभा हुई। इस सभा में भगवान् बुद्ध के उपदेशों और व्याख्यानों को तीन भागों में विभक्त करके उसका नाम 'तिपिटक' (त्रिपिटक) रखा गया—(१) विनयपिटक, (२) सुत्तपिटक और (३) अभिधम्म पिटक। चौथी बौद्ध सभा सम्राट् कनिष्क के राज्यकाल में कश्मीर में वसुमित्र और अश्वघोष की अध्यक्षता में हुई। इसमें त्रिपिटक की टीकाओं की व्यवस्था की गई और पाली के स्थान पर संस्कृत को बौद्धधर्म की भाषा स्वीकार किया गया। इसी समय बौद्ध धर्म की दो शाखाएँ हो गईं—हीनयान और महायान। हीनयान ने त्रिपिटक और पाली भाषा को ही स्वीकार

किया, परन्तु महायान ने अनेक नवीन बातों का भी समावेश किया और संस्कृत को भाषा-माध्यम स्वीकार किया। हीनयान का भारत के अतिरिक्त लंका, यूनान, बर्मा, जावा, सुमात्रा आदि में प्रचार हुआ और महायान का चीन, जापान, मंगोलिया, कोरिया, पूर्वी तुर्किस्तान और उत्तर भारत में।

तिपिटक (त्रिपिटक)

जैसा कि पीछे बताया गया है, बौद्ध धर्म के सबसे अधिक मान्य धार्मिक ग्रन्थ तिपिटक अथवा त्रिपिटक हैं। इनकी रचना महात्मा बुद्ध ने स्वयं नहीं की, वरन् उनके निर्वाण के पश्चात् उनके शिष्य कस्सप (काश्यप) ने उनके (महात्मा बुद्ध के) उपदेशों और व्याख्यानों का संकलन करके उन्हें दो संग्रहों का रूप दिया—धम्म और विनय। महात्मा बुद्ध के निर्वाण के २३६ वर्ष पश्चात् २५१ पू० ई० में सम्राट् अशोक के शासन-काल में मोग्गलीपुत्त तिस्स की अध्यक्षता में हुई तीसरी बौद्ध सभा में कस्सप द्वारा संकलित द्विपिटक को तीन भागों में विभक्त करके त्रिपिटक का रूप दिया गया। वे तीन पिटक हैं—(१) विनय पिटक, (२) सुत्तपिटक और (३) अभिधम्म पिटक।

बुद्ध के वचनों का 'नवांग भाग' के रूप में भी विभाजन किया गया है—(१) सुत्त, (२) गेय्य, (३) वेय्याकरण, (४) गाथा, (५) उदान, (६) इतिवुत्तक, (७) जातक (८) अब्भुत धम्म और (९) वेदल्ल। कुछ आचार्यों ने और प्रकार से भी उनका विभाजन किया है। परन्तु तीन पिटकों का विभाजन ही अधिक सुगम, वैज्ञानिक और परम्परागत है। बौद्ध धर्मावलम्बी अधिकतर इसे ही प्रामाणिक मानते हैं।

१. **विनय पिटक**—इसमें भिक्षुओं और भिक्षुणियों सम्बन्धी नियम हैं जो बुद्ध-शासन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इस ग्रन्थ के चार भाग हैं—(१) सुत्त विभंग, (२) खन्धक, (३) परिवार और (४) पातिमोक्ख। पतिमोक्ख में जो नियम दिये गये हैं उन्हीं की व्याख्या सुत्तविभंग में है। सुत्तविभंग के दो भाग हैं— पाराजिक और पाचित्तिय। खन्धक के भी दो भाग हैं—महावग्ग और चुल्लवग्ग।

२. **सुत्तपिटक**—इसमें भगवान् बुद्ध के संवाद, कथानक, पद्यमय कथन और उपदेश हैं जो उन्होंने अनेक स्थानों पर दिये। इस पिटक की शैली की गम्भीरता की तुलना डॉक्टर रायज़ डेविड्स ने प्लैटो के संवादों से की है, परन्तु बुद्ध

के संवादों की तुलना में प्लैटो के संवाद सर्वथा नगण्य प्रतीत होते हैं। सुत्त पिटक पाँच भागों में विभक्त है—(१) दीर्घ निकाय, (२) मज्झिम निकाय, (३) संयुत्त निकाय, (४) अंगुत्तर निकाय और (५) खुद्दक निकाय। दीर्घ निकाय तीन भागों या वर्गों (वग्ग) में विभक्त है जिसमें कुल मिला कर दीर्घाकार ३४ सुत्त (सूत्र) हैं। ये तीन वर्ग हैं—सीलक्खन्ध, महावग्ग वग्ग और पाथेय या पाटिक वग्ग। मज्झिम निकाय पन्द्रह वर्गों में विभक्त है और इसमें कुल १५२ सुत्त (सूत्र) हैं जो मध्यम लम्बाई के हैं। ये पन्द्रह वर्ग हैं—मूल परियाय वग्ग, सीहनाद वग्ग, ओपम्म वग्ग, महायमक वग्ग, चूल यमक वग्ग, भिक्खु वग्ग, परिब्बाजक वग्ग, राज वगग, ब्राह्मण वग्ग, देवदह वग्ग, अनुपद वग्ग, सुञ्जता वग्ग, विभंग वग्ग और सडायतन वग्ग। संयुत्त निकाय में पाँच वर्ग हैं और कुल मिला कर ५६ संयुत्त हैं। पाँच वर्ग हैं—सगाथ वग्ग, निदान वग्ग, खन्ध वग्ग, सडायतन वग्ग और महा वग्ग। अंगुत्तर निकाय विशेष रूप से संख्यात्मक है और ग्यारह निपातों में विभक्त है। खुद्दक (क्षुद्रक) निकाय सोलह भागों में विभक्त है—खुद्दक पाठ, धम्म पद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरी गाथा, जातक, महानिदेस, चुल्ल निदेस, पटिसम्भिदा मग्ग, अपदान, बुद्धवंस और चरिया पिटक।

३. अभिधम्म पिटक—इसमें भगवान् बुद्ध के दार्शनिक विचारों को संकलित किया गया है। दार्शनिक दृष्टि से यह पिटक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विषय की दृष्टि से इसमें कुछ नवीन नहीं है। सुत्तपिटक में जो बातें कही गई हैं उन्हीं की तात्त्विक एवं नैतिक व्याख्या इनमें की गई है। सुत्तपिटक में व्यवहार वचन (वोहार वचन) प्रस्तुत किये गये हैं और अभिधम्म पिटक में परमार्थ वचन (परमत्थ वचन)। अभिधम्म पिटक सात भागों में विभक्त है—(१) धम्म संगणि, (२) विभंग, (३) धातु कथा, (४) पुग्गल पञ्जत्ति (पुद्गल प्रज्ञप्ति) (५) कथावत्थु, (६) यमक और (७) पट्ठान।

विस्तार-भय से तीन पिटकों के इन अनेक वर्गों और निकायों का विषय-प्रतिपादन और विवेचन यहाँ नहीं किया जा सकता। हाँ, यह कहने में किसी को संकोच नहीं हो सकता कि यह वर्गीकरण बड़े प्रयत्न से और वैज्ञानिक ढंग पर किया गया है।

बुद्ध के सिद्धान्त

१. बुद्ध का धर्म आचार प्रधान धर्म है। उन्होंने इसे मध्यम मार्ग (मज्झिम

मग्ग) कहकर पुकारा है। आत्मा, परमात्मा, सृष्टि, मृत्यु और उसके बाद की स्थिति आदि विषयों को वे अव्याकृत (कथन का अविषय) कहते थे और इनके सम्बन्ध में वे चुप रहते थे। यदि कोई इनके विषय में प्रश्न करता था तो वे उत्तर नहीं देते थे। दीर्घ निकाय के पोठ्ठपादसुत्त में पोठ्ठपाद के यह पूछने पर कि "किस लिए भन्ते ! भगवान् ने इसे (लोक और जीव की नित्यता-अनित्यता विषयक प्रश्न को) अव्याकृत कहा है ?" उन्होंने बतलाया कि "ये प्रश्न न तो अर्थयुक्त हैं, न धर्मयुक्त हैं, न आदि ब्रह्मचर्य के उपयुक्त हैं, न निर्वेद (वैराग्य) के लिए, न विराग के लिए, न निरोध के लिए, न उपशम के लिए"।

२. बुद्ध का दार्शनिक सिद्धान्त **प्रतीत्य समुत्पाद (परिच्चसमुप्पाद) और क्षणिकवाद** कहलाता है। इसी को उन्होंने धम्म (धर्म) कहकर पुकारा है। इससे उनका अभिप्राय यह था कि समस्त विश्व कार्य-कारण-शृंखला का परिणाम है। प्रत्येक घटना दूसरी घटना का परिणाम होती है। 'ख' वस्तु 'क' वस्तु के नष्ट (प्रतीत्य) हो जाने के पश्चात् उत्पन्न होती है, परन्तु वह 'ख' वस्तु भी क्षणिक है और उसके नष्ट हो जाने पर 'ग' की उत्पत्ति (समुत्पाद) होती है। 'क' की उत्पत्ति पर 'ख' की उत्पत्ति और 'ख' की उत्पत्ति पर 'ग' की उत्पत्ति निर्भर है। इसी प्रकार सभी वस्तुएँ सापेक्ष्य हैं और क्रमशः नष्ट और उत्पन्न होती रहती हैं। इस प्रकार कार्य-कारण-शृंखला का प्रवाह (परम्परा) चलता रहता है और यही जगत् है। अनादि काल से यही नाश-उत्पत्ति का क्रम चलता आ रहा है। यहाँ न तो कुछ नित्य है और न ही अविनाशी। विश्व में कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है। जीव, जड़ पदार्थों से भिन्न है, परन्तु वह नित्य चैतन्य नहीं है। आत्मा भी प्रतिक्षण बदलती रहती है। यही बुद्ध का क्षणिकवाद है। क्षणिकवाद के अनुसार आत्मा 'पंच स्कन्ध' (रूप, विज्ञान वेदना, संस्कार और संज्ञा) के संघात का नाम है, परन्तु वह स्थायी नहीं है।

३. 'प्रतीत्य समुत्पाद' के अनुसार जन्म-मरण की कार्य-कारण शृंखला पर विचार करते हुए बुद्ध ने चार आर्य सत्य स्वीकार किये हैं—(१) दुःख, (२) दुःख का समुदाय, (३) दुःख का निरोध और (४) दुःख-निरोध-गामी प्रतिपद।

४. अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम रूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति (जन्म) और जरा-मरण-दुःख—ये बारह उपादान हैं जो क्रमशः एक दूसरे से उत्पन्न होते हैं। जैसे अविद्या से संस्कार, संस्कारों से विज्ञान, विज्ञान से नाम रूप आदि। अविद्या के नाश से क्रमशः इनका नाश हो

सकता है।

५. अविद्यादि निदानों और दुःख से छूटने के लिए आष्टाङ्गिक मार्ग को अपनाना चाहिये। अष्टाङ्ग-मार्ग हैं—

(क) **सम्यक् दृष्टि** (बुद्धि का सदुपयोग)

(ख) **सम्यक् संकल्प** (सत्कर्म करने का संकल्प)

(ग) **सम्यक् वाचा** (पवित्र वचन अर्थात् मिथ्याभाषण, चुगली, कटुभाषण आदि का परिहार)

(घ) **सम्यक् कर्मान्त** (उच्च उद्देश्य अर्थात् हिंसा, दुराग्रह, दुराचार आदि का परिहार)

(ङ) **सम्यक् आजीव** (शुद्ध और पवित्र आजीविका)

(च) **सम्यक् व्यायाम** (सद्व्यवहार अर्थात् शारीरिक तथा मानसिक दोषों का परिहार)

(छ) **सम्यक् स्मृति** (अच्छी बातों का स्मरण और उनमें विश्वास)

(ज) **सम्यक् समाधि** (शान्ति और एकाग्रता से अपने-आपको जानने का प्रयत्न)

अष्टाङ्ग मार्ग पर ठीक प्रकार से आचरण करने के लिए बौद्धमत में दीक्षित होने वालों को निम्नलिखित प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ती थीं :—

(क) मैं हिंसा नहीं करूँगा।

(ख) मैं किसी प्रकार की चोरी न करूँगा।

(ग) मैं पवित्र जीवन व्यतीत करूँगा।

(घ) मैं मिथ्या भाषण नहीं करूँगा।

(ङ) मैं किसी मादक द्रव्य का सेवन नहीं करूँगा।

इनके अतिरिक्त भिक्षुओं को पाँच और प्रतिज्ञाएं करनी पड़ती थीं—

(क) मैं केवल नियत समय पर भोजन करूँगा।

(ख) मैं नृत्य संतीत आदि से कोई प्रयोजन न रखूँगा।

(ग) मैं गद्दी पर नहीं सोऊँगा।

(घ) मैं आभूषणों का व्यवहार नहीं करूँगा।

(ङ) मैं धनसंचय नहीं करूँगा।

महावीर स्वामी के समान महात्मा गौतम बुद्ध भी वैदिक कर्मकाण्ड के विरुद्ध थे और वेद-साहित्य के प्रति उदासीन थे। परन्तु जैसे महावीर स्वामी के विचारों और वचनों पर वेद की उक्तियों, उपनिषदों, गीता आदि का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है वैसे ही महात्मा बुद्ध के वचनों पर भी दिखाई देता है। निम्न-

लिखित कुछ उदाहरणों से इस बात की पुष्टि हो सकती है :—

बुद्ध	उपनिषद्, गीता आदि
१. मनोपुब्बंगमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया । मनसा चे पदुठ्ठेन भासति वा करोति वा ॥	१. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । बन्धाय विषयासङ्गी मोक्षे निर्विषयं स्मृतम् ॥ (मैत्रायणी उप० ४/३४)

ततो नं दुक्खं अन्वेति चक्कं
वा वहतो पदम् ।
(धम्मपद, यमक वग्ग, १)

२—अञ्ञा हि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बानगामिनी ।
एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खु बुद्धस्स सावको ॥
सक्कारं नाभिनंदेय्य विवेकं अनुब्रूहये ॥
(धम्मपद, बालवग्गो, १६)

२—अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः ।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥
(कठ० २/१)

३—यस्सेन्द्रियानि समथं गतानि ।
अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता । (धम्मपद, अर्हन्तवग्गो, ५)

३—यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रिमाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥ (कठ० ३/६)

४—न जच्चा वसलो होदि न जच्चा होदि ब्रह्मणो ।
कम्मुणा वसलो होदि कम्मुना होदि ब्रह्मणो ॥

४—जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा द्विव उच्यते । (मनुस्मृति)

५—न हि पापं कतं कम्मं सज्जु खीरं वा मुच्चति ।
(धम्मपद, बाल वग्गो, १२)

५—नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव । (मनु० ४/१७२)

६—अनिक्कसावो कासावं मो वत्थं परिदहेस्सति ।
अपेतो दमसच्चेन न सो कासावमरहति ॥ (धम्मपद, यमकवग्गो, ९)

६—अनिष्कषाये कापायमिहार्थमिति विद्धि तत् ।
धर्मध्वजानां मुण्डानां वृत्त्यर्थमिति ये मतिः ॥ (महाभारत, १२/५६८)

७—येसं संनिचयो नत्थि ये परिञ्ञातभोजना
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोखो येसं गोचरो,
आकासे वा सकुन्तानं गति तेसं दुरण्णया ॥

(धम्मपद, अर्हन्त वग्गो, ३)

७—शकुन्तानामिवाकाशे मत्स्यानामिव चोदके ।
यथा पदं न दृश्येत तथा ज्ञानविदां गतिः ॥

(महाभारत, १२/६७६३)

८—सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियम् ।
अत्तानं उपत्र कत्वा न हनेय्य न घातये ॥ (धम्मपद, दण्डवग्गो, २)

८—आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् । (महाभारत)
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुनः ॥ (गीता, ६/३२)

९—सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति ।
अत्तनो सुखं एसानो पेच्च सो न लभते सुखम् । (धम्मपद, दण्डवग्गो, ३)

९—अहिंसकामि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः ।
आत्मनः सुखमिच्छन् स प्रेत्य नैव सुखी भवेत् ॥

(महाभारत, १३/५५६८)

१०—अभिवादनसीलस्स निच्चं वद्धापचायिनो ।
चत्तारो धम्मा वड्डन्ति, आयु वण्णो सुखं बलम् ।

(धम्मपद, सहस्सवग्गो, १०)

१०—अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि संप्रवर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ (मनु० २/१२१)

११—न तेन थेरो सो होति येनास्स फलितं सिरो ।
परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णोति वुच्चति ॥

(धम्मपद, धम्मठ्ठवग्गो, ५)

११—न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवा प्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥ (मनु० २/१३६)

१२—अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया ।
अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभम् ॥

(धम्मपद, अत्तवग्गो, ४)

१२—उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ (गीता, ६/५)

१३—अत्तदत्थं परत्थेन बहुनापि न हापये ।
अत्थदत्थमभिञ्ञाय सदत्थपसुतो सिया ।। (धम्मपद, अत्तवग्गो, १०)

१३—श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।। (गीता, ३/३५)

तुलना के लिए ये कुछ पद केवल धम्मपद से लिये गये हैं । ऐसे ही दस-बारह और पद भी धम्मपद से ही तुलना के लिए जा सकते हैं । धम्मपद सुत्तपिटक के खुद्दकनिकाय का दूसरा वर्ग अथवा भाग है । इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि तीनों पिटकों में महात्मा बुद्ध के वचनों और सिद्धान्तों पर पूर्व ग्रन्थों का कितना अधिक प्रभाव है ।

७

ताओ मत (Taoism)

ताओ मत (Taoism) चीन के दो प्रमुख मतों में से एक है। यह साधारणतया निवृत्तिवाद है जो भारतीय निवृत्तिवाद से भी कई गुना अधिक है। इसकी निवृत्तिपरायणता चरम सीमा तक पहुँची हुई है। इसका राजनैतिक पक्ष भी बड़ा विलक्षण है और अराजकतावाद से मिलता-जुलता है। इस मत के प्रवर्तक थे लाओशियस अथवा लाओ-त्से (Lao-tze)। डॉक्टर लैग्ग (Dr. Legge) का कहना है कि लाओ-त्से से पहले भी ताओ मत विद्यमान था और उसी के प्रचलित सिद्धान्तों को लाओ-त्से ने अपनी पुस्तक 'ताओ तेह किंग' में संकलित किया।"[1] परन्तु चीनी लोग ताओ मत का सम्बन्ध लाओ-त्से से ही जोड़ते हैं।

लाओ-त्से अथवा लाओशियस के जीवन का इतिहास पूर्णतया ज्ञात नहीं है। केवल इतना ही पता चलता है कि उनका जन्म ६०४ ई० पू० मध्यचीन के होनान नामक प्रान्त में हुआ। उनका परिवार निर्धन था परन्तु वे अपनी बौद्धिक प्रतिभा के बल पर चाओ के राजकीय पुस्तकालय के अध्यक्ष बन गये। लोग उन्हें बूढ़ा दार्शनिक कहने लगे। उनका नाम भी इसी अर्थ को सूचित करता है। 'नाओ' का अर्थ है बूढ़ा और 'त्से' अथवा 'शियस' का अर्थ है 'स्वामी'। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों से पीड़ित होकर अपने नगर को छोड़ दिया और दूसरे राज्य में चले गये। ८७ वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हुई। उनके विचारों की प्रतिपादिका एक ही पुस्तक मिलती है, 'ताओ तेह किंग'।

ताओ तेह किंग

चीनी परम्परा के अनुसार लाओ-त्से अथवा लाओशियस ने एक ही पुस्तक 'ताओ तेह किंग' नामक लिखी। और किसी पुस्तक की रचना उन्होंने नहीं की। कुछ लोग तो 'ताओ तेह किंग' को भी उनकी रचना नहीं मानते और उसे उनकी

1. Glimpses of world Religions, p. 240

मृत्यु के बाद उनके शिष्यों द्वारा लिखी गई बताते हैं। उनके लिए यह जीवन-पथ-प्रदर्शक है। चीनी किंवदन्ती के अनुसार जब लाओ-त्से अपने राज्य को छोड़कर दूसरे राज्य में जाने के लिए अपने राज्य (प्रान्त) की सीमा पर पहुँचे तो चुंगी-अधिकारी ने उन्हें रोक दिया और कहा कि "मैं आपको केवल इस शर्त पर जाने दूँगा कि आप जाने से पहले जनता के लाभ के लिए एक पुस्तक लिख दें जिसमें आपका ज्ञान लिपिबद्ध हो।" लाओ-त्से ने इस शर्त को मान लिया और वहीं उसके पास बैठ कर लगभग पाँच हजार शब्दों में अपनी पुस्तक 'ताओ तेह किंग' लिख कर दे दी जिसके दो भाग थे 'ताओ' और 'तेह'।

'ताओ तेह किंग' छोटी-सी पुस्तक है, परन्तु इसमें प्रतिपादित विचार अत्यन्त क्रान्तिकारी हैं और तत्कालीन विचित्र बौद्धिकता के उदाहरण हैं। इन विचारों में मानव रचित सभ्यता का विरोध किया गया है और प्रत्येक वस्तु को अकेला छोड़ देने का उपदेश दिया गया है। इनमें ज्ञान का समर्थन न करके अज्ञान का पक्ष लिया गया है और बताया गया है कि अज्ञान से ही आनन्द की प्राप्ति होती है। सच्चे सन्त को वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए, वरन् संतुष्ट रहना सीखना चाहिए और सरल जीवन व्यतीत करना चाहिए। वस्तुओं का संग्रह नहीं करना चाहिए। शासन और समाज-व्यवस्था के सम्बन्ध में भी लाओ-त्से के ऐसे ही विचार हैं। उनका मत है कि शासन को कुछ नहीं करना चाहिए और समाज-व्यवस्था के लिए नियम नहीं बनाने चाहियें, क्योंकि उनकी प्रतिक्रिया होती है।

सिद्धान्त

साधारणतया लाओ-त्से के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं—

(१) शब्दों में कहा जा सकने वाला ताओ वास्तविक ताओ नहीं है। जिस वस्तु को नाम दिया जा सके, वह वास्तविक वस्तु नहीं होती। जिस तत्त्व से स्वर्ग और पृथ्वी का आरम्भ हुआ, वह अनाम है। जो अनाम-मय है, वह वस्तुओं की जननी है।

(२) स्वर्ग और पृथ्वी से पूर्व सृष्टि में एक ही तत्त्व था। वह शान्त और असीम था। वह स्वयम्भू और एक था। वह सर्वत्र व्यापक और स्थिर था। उसे संसार की माता कहना उचित है। मैं उसका नाम नहीं जानता, परन्तु उसे ताओ कह कर पुकारता हूँ। मनुष्य पर पृथ्वी की सत्ता है, पृथ्वी पर स्वर्ग की सत्ता है, स्वर्ग पर ताओ की सत्ता है और

ताओ अपनी सत्ता स्वयं है।

(३) ताओ अनन्त है, अनाम है, अनगढ़ा पत्थर है। जब पत्थर गढ़ा जाने लगता है, तब उसके नाम पड़ जाते हैं। अथवा छिपा हुआ रहने के कारण ताओ अनाम है।……आरम्भ में ताओ ही था, ताओ ईश्वर के साथ था, ताओ ही ईश्वर था। ताओ की कोई सीमा नहीं है। जो कुछ है सब उसी से उत्पन्न होता है। पता नहीं वह स्वयं किस से उत्पन्न हुआ। वह ईश्वर से भी प्राचीन है।

(४) ताओ ही सृष्टि की उत्पत्ति का कारण है। ताओ से एक उत्पन्न हुआ, एक से दो और दो से तीन हुए। तीन से फिर सब की उत्पत्ति हुई। सभी वस्तुओं के पीछे अनाम और सामने नाम रहता है। उन्हें जो एक करता है, उसे प्राण कहते हैं।……वह नुकीली वस्तुओं को गोल बनाता है। अव्यवस्था से व्यवस्था का निर्माण करता है। प्रकाशहीन वस्तुओं को देदीप्यमान करता है।……सब कुछ पहले फूलता-फलता है और विकसित होता है। फिर वह अपने मूल कारण में जाकर विलीन हो जाता है।

(५) "दुःख के माध्यम से ही सुख का उदय होता है। सुख के भीतर दुःख छिपा रहता है।" "जिनके पास कम है, वे अधिक प्राप्त करेंगे, और जिनके पास अधिक है वे भटक जायेंगे।" "कोमलतम वस्तुएं संसार की कठोरतम वस्तुओं को झुका देती हैं।" "अपरिवर्तनीयता के नियम को अच्छी प्रकार समझ कर मनुष्य को अपना सारा कार्य-व्यवहार करना चाहिए।" जो यह जानता है कि मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ सिद्धियाँ सदैव अपर्याप्त हैं, वह अपना कार्य सफलतापूर्वक करता रहेगा। जो यह जानता है कि बड़ी से बड़ी प्राप्ति भी सदैव अपूर्ण रहती है वह उन्हें और भी प्राप्त करता रह सकेगा।

(६) जो कुछ नहीं करता, वही संसार को जीतता है। कुछ करके मनुष्य संसार को जीत नहीं सकता।

(७) संसार में जितने ही कानून और प्रतिबन्ध होंगे, जनता उतनी ही चोर होगी। जितने ज्यादा और पैने हथियार होंगे, उतना ही देश अशान्त होगा। शिल्पी जितने ही कुशल होंगे, उतने ही हानिकारक हथियार बनेंगे। इसलिए—

गुणीजनों का सम्मान मत करो, जनता सरल हो जाएगी। दुर्लभ वस्तुओं

का संग्रह मत करो, चोरी पर नियन्त्रण हो जाएगा। कामना उत्तेजित करने वाली चीजें लोगों को मत दिखाओ, उनका मन शान्त होगा।

(८) सन्त जनता का शासन उनका दिमाग खाली कर के, पेट को भरकर, इच्छाओं को दुर्बल बना कर, हड्डियों को ठोस बना कर तथा उसे ज्ञान और कामना से हीन करके करता है। वह सदा पीछे रहते हुए भी आगे रहता है। चुप रहते हुए भी वह बोलता है। अपने लिए कुछ न करते हुए भी उसके सब उद्देश्य पूर्ण हो जाते हैं।

(९) मनुष्य यदि दुनिया को सुधारने का काम अपने हाथ में ले तो मुझे लगता है कि उसका कभी अन्त आने वाला नहीं है। जो व्यक्ति उत्तम वस्तुओं को बनाने का विचार करता है, वह वास्तव में उन्हें नष्ट ही करता है। जो संग्रह करना चाहता है, वह गंवाता ही है। क्योंकि एक की उन्नति हो तो दूसरा पिछड़ जाएगा। एक गरम हो तो दूसरा ठंडा पड़ जाएगा। एक को आधार मिले तो दूसरा निराधार हो जाएगा।

(१०) ज्ञान को मिटा दो, दुःख नष्ट हो जाएगा। सन्तों को मिटा दो और उनकी वाणियों को जला दो, लोग सौ गुणा सुखी हो उठेंगे। सेवा और सच्चाई को मिटा दो, लोग माता-पिता और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करेंगे। सम्पत्ति को नष्ट कर दो, चोर-डाकू नहीं रहेंगे। सरलता और सादगी ही सर्वोत्तम आचरण है।

८

कन्फ्यूशियस मत (confucianism)

कन्फ्यूशियस मत चीन का दूसरा प्रमुख मत है जिसका प्रवर्तन लगभग उसी समय हुआ जब कि ताओ मत का हुआ। लाओ-त्से और कन्फ्यूशियस दोनों समकालीन थे और चीनी परम्परा के अनुसार दोनों का एक बार मिलन भी हुआ था। उस समय कन्फ्यूशियस युवावस्था में थे और लाओ-त्से वृद्ध थे। कन्फ्यूशियस मत लाओ-त्से के ताओ मत के सर्वथा विपरीत था। ताओमत यदि निवृत्तिप्रधान था तो कन्फ्यूशियस मत प्रवृत्तिप्रधान और जीवन परक था। जीवन परकता और व्यवहारिकता उसकी मुख्य विशेषता थी। उसकी भारतीय दर्शन से तुलना करते हुए कहा जा सकता है कि यदि भारतीय दर्शन आध्यात्मिक है और ब्रह्म, जीव, जीवन सम्बन्धी और मरणोत्तर विषयों पर भी विचार करता है तो कन्फ्यूशियस दर्शन भौतिक है और मनुष्य, समाज तथा इसी जीवन से सम्बन्धित समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करता है। परन्तु कन्फ़्यूशियस मत की भौतिकता निन्दनीय नहीं है, क्योंकि उसमें व्यक्तिगत नैतिकता और आचार पर भी ज़ोर दिया गया है। कुछ लोगों ने तो चीनी कन्फ़्यूशियस दर्शन को आचारवादी दर्शन कह कर पुकारा है।

कन्फ़्यूशियस के जन्म के साथ अनेक चमत्कारिक कथाएं जुड़ी हैं। परन्तु वे सू-लियांग-हो नामक वृद्ध के अवैध पुत्र थे और उनका जन्म ५५० अथवा ५५१ पू० ई० में लू नामक राज्य में हुआ था। उनका आरम्भिक जीवन कठिनाइयों में बीता, परन्तु अपने परिश्रम और अध्ययन शीलता के फलस्वरूप वे शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गये। उन्होंने क्रमशः अध्यापक, न्यायाधीश, मन्त्री और प्रधानमन्त्री के रूप में कार्य किया। लू के शासक से असन्तुष्ट होकर उन्होंने प्रधानमन्त्री का पद त्याग दिया और राज्य को भी छोड़ दिया। तब वे लगभग तेरह वर्ष दूसरे राज्यों में घूमते रहे। वे दिन उनके अत्यन्त कठिनाई के दिन थे, परन्तु उनके शिष्य उनके साथ ही रहे। उस शासक की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी की प्रार्थना पर कन्फ़्यूशियस अपने नगर में लौट आए। उस

समय उनकी आयु सतासठ वर्ष की थी। उसके बाद वे पांच वर्ष तक और जीते रहे तथा परामर्श और शिक्षा देने का कार्य करते रहे। ४७९ अथवा ४७८ पू० ई में ७२ वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गई।

कन्फ़्यूशियस के जीवनी-लेखकों का कहना है कि वे (कन्फ़्यूशियस) अपने जीवन-काल में सफल नहीं हो सके। लोगों में उनके मत का प्रचार भी न हो सका। उन्होंने स्वयं किसी नये मत की स्थापना का दावा भी नहीं किया और न ही वे किसी नये मत की स्थापना करना ही चाहते थे। उनका कहना था कि "मैं प्राचीन श्रेष्ठ विचारों को दूसरों तक पहुँचाने वाला हूँ, उन का निर्माता नहीं हूँ।" (a transmitter not a maker)। परन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी वहुत प्रसिद्धि हुई और उनके शिष्यों ने उनके मत का खूब प्रचार किया। उनके मत के प्रचारक शिष्यों में उनके पोते और शिष्य कुंग ची तथा शिष्य मैन्शियस (Mencius) का विशेष रूप ही उल्लेख किया जा सकता है। मैन्शियस का स्थितिकाल कन्फ़्यूशियस से लगभग दो सौ वर्ष पश्चात् ३७२:२८९ पू० ई० बताया जाता है।

लुन यू

कन्फयूशियस की रचनाओं के सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ लेखकों के अनुसार उन्होंने चार पुस्तकें लिखीं और कुछ के अनुसार पांच। उनकी पांच पुस्तकें बताई जाती हैं—(१) अभिलेख-पुस्तक (Book of Records), (२) गीत-पुस्तकें (Book of odes (३) परिवर्तन पुस्तक (Book of Changes), (४) बसन्त और पतझड़ इतिवृत्त (Spring and Autumn Annals) और (५) इतिहास की पुस्तक (Book of History)। इन में से प्रथम पुस्तक में पुराने धार्मिक शासकों और ईमानदार मन्त्रियों का रिकार्ड है। ये रिकार्ड ऐतिहासिक अभिलेखों के रूप में नहीं हैं। परन्तु इनमें तात्कालीन शासन की घटनाओं और सन्धियों आदि का उल्लेख है। पुस्तक का मुख्य उद्देश्य नैतिकता की शिक्षा देना है। कन्फ़्यूशियस जिन नैतिक सिद्धान्तों का समर्थक था वे पुस्तक में सर्वत्र देखे जा सकते हैं। इस पुस्तक का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग वह है जिसमें कन्फ़्यूशियस ने मानवीय समाज की व्यवस्था के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। दूसरी पुस्तक में तीन सौ पांच गीत हैं। चीनी साहित्य में इस पुस्तक को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह पुस्तक चार भागों में विभक्त है—(१) लोक गीत, (२) 'या' सम्बन्धी छोटे गीत, (३) 'या' सम्बन्धी मुख्य गीत,

(४) स्तुतिगीत । इन गीतों का मुख्य विषय है जीवन और नैतिकता सम्बन्धी सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति । संक्षेप में इन गीतों का सार है "अपवित्र विचार मत रखो ।" तीसरी पुस्तक आध्यात्मिकता से सम्बन्ध रखती है और इसमें चीनी प्रतिभा का उत्कृष्ट संकलन है । कहा जाता है कि कन्फ़्यूशियस अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अधिकतर इसी पुस्तक में व्यस्त रहता था । चौथी पुस्तक कन्फ़्यूशियस ने अपने जीवन के अन्तिम पांच वर्षों में लिखी थी । इसे राजकीय रचना कहा जाता है । इसमें ऐतिहासिक शैली में लू राज्य का इतिवृत्त है । परन्तु साहित्यिकता की दृष्टि से यह पुस्तक सामान्य स्तर की हैं, उत्कृष्ट रचना नहीं है । पांचवीं पुस्तक में चीन के आरम्भिक धर्मों और मतों की कहानियां और घटनाएं हैं । इन पांच पुस्तकों के अतिरिक्त छटी पुस्तक है 'लुन यू' जिसमें कन्फ़्यूशियस के उपदेशों, वचनों तथा संवादों का संग्रह है । यह संग्रह कन्फ़्यूशियस ने स्वयं नहीं तैयार किया था उन की मृत्यु के पश्चात् उन के शिष्यों ने तैयार किया । परन्तु जहां तक कन्फ़्यूशियस मतानुयायियों का सम्बन्ध है वे अन्य पांचों पुस्तकों की अपेक्षा 'लुन यू' को ही अपनी प्रमाणिक धार्मिक पुस्तक स्वीकार करते हैं ।

कुछ विवेचकों के अनुसार कन्फ़्यूशियस ने एक ही पुस्तक लिखी थी— 'चुन चिऊ किंग' अर्थात 'बसन्त और पतझड़ इतिवृत्त' । यही एक ऐसी पुस्तक है जिसे पूर्णतया कन्फ़्यूशियस की रचना माना जाता है । शेष सभी पुस्तकें उन के वचनों के आधार पर उनके नाम से उनके शिष्यों द्वारा रची गईं । परन्तु 'चुन चिऊ किंग' अर्थात् 'बसन्त और पतझड़ इतिवृत्त' अत्यन्त साधारण स्तर की पुस्तक है । ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका कुछ किशेष महत्व नहीं है । इसलिए 'लुन यू' ही उनके वचनों और उपदेशों का प्रामाणिक संग्रह है । इसे चीनी दर्शन के 'जू' स्कूल अर्थात् विद्वानों के स्कूल का प्रतिष्ठता माना जाता है । इसमें मानवता तथा सच्चाई पर अधिक बल दिया गया है ।

कन्फ्यूशियस के सिद्धान्त

१- कन्फ़्यूशियस दर्शन आचार प्रधान और मानवतावादी है । इसलिए वह व्यक्ति और समाज के सुधार, हित और मंगल को चाहता है । वह आदर्श समाज की स्थापना चाहता है । कन्फ़्यूशियस का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति के निश्चित कार्य होते हैं, जो उसे करने ही चाहियें । उसके लिए उन कार्यों का करना ही नैतिकता है और इसी भाव से उसे उन्हें करना भी चाहिये यदि कोई

व्यक्ति अपने लिए नियत कार्य तो करता है, परन्तु उसके कार्य के पीछे नैतिक भावना नहीं रहती तो उसका वह कार्य सच्चा नहीं माना जा सकता। उस कार्य को व्यक्तिगत लाभ के लिए किया गया माना जाएगा, जो अनुचित है।

२. कन्फ़्यूशियस माता-पिता की सेवा और आज्ञा-पालन पर तथा पूर्वजों की पूजा पर बहुत बल देता है। उसका कहना है कि पुत्र अपने माता-पिता को उनके जीवन-काल में सभी प्रकार का सुख दे, मर जाने पर विधिपूर्वक उनका संस्कार करे तथा तीन वर्ष तक शोक मनाए और तर्पण करे।

३. चीनी दर्शन में 'ताओ' शब्द का बहुत महत्त्व है। 'ताओ' का अर्थ है 'मार्ग'। लाओ-त्से ने इसे ब्रह्म का पर्याय माना, परन्तु कन्फ़्यूशियस ने इसे सदाचार का मार्ग स्वीकार किया। उसका कहना है कि जिस प्रकार स्वर्ग का मार्ग होता है, उसी प्रकार शासन और मनुष्यों के भी मार्ग होते हैं। शासक और जनता का सम्बन्ध पिता और पुत्र के सम्बन्ध के समान होता है। राजकीय सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्ध ही होते हैं।

४. कन्फ़्यूशियस के दार्शनिक सिद्धान्तों को चार प्रतीक शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है **(१) यी, (२) जेन, (३) ली और (४) चिह**।

(क) **यी**—'यी' का अर्थ है प्रत्येक कार्य को श्रेष्ठ ढंग से करना। श्रेष्ठ ढंग के लिए पारस्परिक आदान-प्रदान आवश्यक है। इसलिए दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें। दूसरों के प्रति वह व्यवहार मत करो जो तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे प्रति न करें। पिता और पुत्र में, पति और पत्नी, शासक और शासित में, रोगी और स्वस्थ में सदैव पारस्परिक सहानुभूति रहनी चाहिए।

(ख) **जेन**—**'जेन'** का अर्थ है 'मानवता'। इसके दो पक्ष हैं—**'चुंग'** और **'शू'**। **'चुंग'** का अर्थ है 'मनुष्य जो अपने लिए चाहे वही दूसरों के लिए भी करना। 'शू' का अर्थ है 'मनुष्य जो अपने लिए न चाहे उसे दूसरों के लिए भी न करना'। कन्फ़्यूशियस के अनुसार सामाजिकता का मूल नियम है—'अपनी इच्छाओं के अनुसार दूसरों से व्यवहार करना'। इस नियम के अनुसार मनुष्य को केवल अपने आप को ही नहीं, दूसरों को भी जीवित रखना है; केवल अपने आपको ही नहीं, दूसरों को भी सुखी बनाना है। इसलिए जो व्यक्ति पिता को पुत्र के ढंग से, पुत्र को पिता के ढंग से, मित्र को मित्र के ढंग से और पड़ौसी को पड़ौसी के ढंग से

प्यार करता है वही समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को ठीक ढंग से निभाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य को अपने अधिकारों की मांग नहीं करनी चाहिए, बल्कि दूसरों के अधिकारों को मान्यता देनी चाहिए। ऐसा करने से शासक और शासित का संघर्ष समाप्त हो जाता है और मनुष्य कर्तव्यपरायण बन कर सज्जन बन जाता है। 'यी' और 'जेन' सिद्धान्त गीता के कर्मयोग से मिलते-जुलते हैं।

(ग) **ली**—'ली' का अर्थ है 'औचित्य' अर्थात् "अपने मानसिक भावों को उचित और ठीक ढंग से व्यक्त करना।" मनुष्य के भावों और विचारों की अभिव्यक्ति से उसके स्वभाव की अभिव्यक्ति होती है। इस लिए कन्फ़्यूशियस का कहना है कि भावाभिव्यक्ति उचित ढंग से होनी चाहिए और उसका आचार के साथ औचित्य रहना चाहिए। मानवीय सम्बन्धों की पद्धति के लिए यी, जेन और ली अत्यन्त आवश्यक हैं।

(घ) **चिह**—'चिह' का अर्थ है 'बुद्धि'। मनुष्य तब तक बुद्धिमान् नहीं हो सकता, जब तक वह प्रसन्न न हो और तब तक प्रसन्न नहीं हो सकता जब तक उसका जीवन में विश्वास न हो। इस प्रकार बुद्धि विश्वसनीय जीवन में रहती है और जीवन तभी विश्वसनीय बन सकता है जब मनुष्य यी, जेन और ली सिद्धान्तों का पालन करता है। इसलिए बुद्धिमान् वही है जो यी, जेन और ली सिद्धान्तों का पालन करता है और कर्तव्यपरायण होकर सज्जन बनने का मार्ग अपनाता है।

कन्फ़्यूशियस के इन सिद्धान्तों की गीता के कर्मयोग से और महात्मा बुद्ध के अष्टाङ्गमार्ग से तुलना की जा सकती है।

शिन्तो मत (Shintoism)

शिन्तो[1]-मत (कामी-नो-मिची) जापान के प्रमुख तीन मतों में से है। वहां के प्रमुख तीन मत हैं—(१) शिन्तो-मत, (२) बुद्ध-मत (महायान शाखा) और (३) कन्फ़्यूशियस-मत। परन्तु इन तीनों मतों में से सब से प्राचीन शिंतो मत है। यह मत पौराणिक ढंग का है और देवी-देवताओं की कथाओं पर आधारित है। कुछ विवेचकों ने तो इसे जापानी देवी-देवताओं का धर्म अथवा मत कह कर पुकारा है। पौराणिक ढंग का होने पर भी यह मत अत्यन्त सरल और आचार-प्रधान है। सच्चाई, ईमानदारी, वीरता और देश प्रेम शिंतो-मतावलम्बियों की प्रमुख विशेषताएं हैं। कुछ विवेचकों का यह भी कहना है कि ये सद्गुण बौद्ध और कन्फ़्यूशियस मतों के प्रभाव का फल हैं। वैसे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि जापान के वर्तमान तीन प्रमुख मत एक-दूसरे से प्रभावित हैं। एक प्रचलित कहावत के अनुसार जापान में प्रचलित तीनों मतों और नैतिक मार्गों की वृक्ष के मूल, तने और शाखाओं तथा फूलों और फलों से तुलना की जाती है। शिंतो-मत की तुलना मूल (जड़) से की जाती है, क्योंकि वह वहां की जनता के चरित्र और राष्ट्रीय परम्पराओं में मूल रूप से विद्यमान है। कन्फ़्यूशियस-मत तने और शाखाओं के समान है, क्योंकि वहां की क़ानूनी संस्थाएं और नैतिकता के नियम उसी पर आधारित हैं। बौद्ध-मत फूलों और फलों के समान है, क्योंकि धार्मिक भावनाएं और धार्मिक जीवन उसी पर निर्भर है। एक और कहावत के अनुसार प्रत्येक जापानी शिंतो बन कर जन्मता है, कन्फ़्यूशियस मतानुयायी बनकर जीता है और बौद्ध के रूप में मरता है। ऐसा इसलिए कहा जाता है, क्योंकि जन्म के समय वह अपने पैतृक देवी-देवताओं

१. 'शिन्तो' शब्द चीनी भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'देवताओं का मार्ग'। यह 'शिन'—देवता और 'तो' (ताओ)— मार्ग शब्दों से मिलकर बनता है। इसके लिए जापानी शब्द है—'कामी-नो-मिची' अर्थात् 'कामी नो'—देवताओं का, 'मिची'—मार्ग।

से सम्बन्ध रखता है, जीवन-काल में कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों पर आचरण करता हो और मृत्यु होने पर उसका संस्कार बौद्ध रीति के अनुसार होता है।

शिन्तो मतानुयायियों का विश्वास है कि जब भूमि और आकाश अलग हुए और जब वृक्षों और लताओं में बोलने की शक्ति थी तभी देवता आकाश से उतरे और उन्होंने जापान देश को और वहाँ के निवासियों को जन्म दिया। तभी से लेकर वहाँ देवताओं की सन्तान मिकादोओं (मानवीय कामियों) का शासन है। ऐतिहासिक दृष्टि से जापान में एक ही वंश अत्यन्त प्राचीन-काल से शासन करता चला आ रहा है और राजा ही मुख्य धार्मिक नेता भी समझा जाता है।

कोजीकी और निहोंगी

शिन्तो मत की धार्मिक पुस्तकें दो हैं—कोजीकी और निहोंगी। परन्तु ये दोनों पुस्तकें बहुत प्राचीन न होकर आठवीं ईसवी शताब्दी की रचनाएं हैं। ईसा की पाँचवीं शताब्दी में जापान में चीनियों के द्वारा चीनी लिपि और शिक्षा का प्रचार किया गया। उससे पहले वहाँ के लोग धार्मिक, नैतिक और शासन सम्बन्धी बातों और नियमों को केवल ज़बानी याद रखते थे और श्रुति-परम्परा से चलाते थे। लिखित रिकार्ड कोई नहीं था। चीनी लिपि के प्रचार के बाद लिखित रिकार्ड आरम्भ हुआ। छठी-सातवीं शताब्दी में जापान में महायान बौद्ध धर्म का भी प्रचार आरम्भ हो गया और आठवीं शताब्दी में वह वहाँ का राज्यधर्म बन गया। सम्भवतः बौद्धधर्म के माध्यम से ब्राह्मी लिपि का वहाँ प्रवेश हुआ हो और चीनी और ब्राह्मी दोनों लिपियाँ एक दूसरी से प्रभावित हुई हों।

'कोजीकी' का संकलन ईसा की सातवीं शताब्दी के आरम्भ में किया गया और उसके शीघ्र ही पश्चात् 'निहोंगी' की रचना हुई। 'कोजीकी' में प्राचीन बातों का रिकार्ड है और निहोंगी में जापान का आरम्भ से लेकर इतिहास है। दोनों पुस्तकों के विषय बहुत कुछ समानता रखते हैं और जापान के प्राचीन देवी-देवताओं, दिव्य एवं मानवीय कामियों के अद्भुत जीवन-चरितों तथा आश्चर्यजनक कार्यों का वृत्तान्त प्रस्तुत करते हैं। इन कथाओं अथवा घटनाओं का आरम्भ लगभग आठवीं शताब्दी पू० ई० से आरम्भ होता है। जापानी

शिन्तोओं के अनुसार जापान की उत्पत्ति उसी समय हुई। जापान का पहला शासक निनिगी (Ninigi) था जो सूर्य देवी (Sun-goddess) का पोता था और उसकी आज्ञा से स्वर्ग से क्युशु नामक द्वीप में उतरा। उसके पश्चात् उसका बेटा जिम्मु तेनो (Jimmu Tenno) शासक बना और उसने यमातो (Yamato) को अपनी राजधानी बनाया। रिकार्ड के अनुसार उसका राज्यारोहन ६६० पू० ई० में हुआ। उसी की वंशपरम्परा अब तक शासन करती चली आती है।

कोजीकी और निहोंगी में प्रतिपादित पुराण-कथा के अनुसार आदिकालीन अव्यवस्था और विप्लव से, जबकि सब ओर अन्धकार था, स्वर्ग में एक-एक करके तीन देवता उत्पन्न हुए। उनमें सबसे पहले मध्याकाश का स्वामी (Mid-Sky-Master) आविर्भूत हुआ और उसने उच्चोत्पादक (High Producer) तथा दिव्योत्पादक (Divine Producer) को जन्म दिया। उन दोनों को ही कामी-रोगी (नर) और कामी-रोमी (स्त्री) कहा जाता है। ये तीनों अदृश्य हो गये और उनके पश्चात् वैसे ही और तीन उत्पन्न हुए। कुछ देर तक यही क्रम चलता रहा। इस परम्परा का अन्तिम जोड़ा था—इज़ानागी और इज़ानामी (Izanagi & Izanami)। इस युगल ने ओनागोरो-जिमा द्वीप को बनाया और वहाँ उतर पड़े। वे दोनों पति-पत्नी रूप में रहने लगे। उन्होंने पहले तो जापान के द्वीप-समूह को जन्म दिया और फिर जल, वायु, पर्वत, खेत, धुन्ध, अग्नि, तूफ़ान को तथा अनेक देवी-देवताओं को जन्म दिया। अग्नि देवता को जन्म देते समय इज़ानामी की मृत्यु हो गई तथा वह योमी अर्थात् अन्धकार प्रदेश में चली गई। उसका पति भी उसके पीछे ही गया, परन्तु उसे वापिस लौटना पड़ा। योमी से लौटकर इज़ानागी ने सागर में स्नान किया। स्नान करते समय उसकी बायीं आँख से सूर्य देवी (Sun-goddess) का और दायीं आँख से चन्द्र देव (Moon-god) का जन्म हुआ। उसके नाक धोने से सूसा-नो-ओ नामक वर्षा-आन्धी के देवता का जन्म हुआ। इज़ानागी के अदृश्य हो जाने के बाद सूसा-नो-ओ ने अपनी बहन सूर्य देवी (Sun-goddess) के शासित प्रदेश में बड़ा उपद्रव किया। इस पर सूर्य देवी एक गुहा में छिप गई। परिणामस्वरूप सब ओर अन्धकार छा गया और व्यवस्था भंग हो गई। अन्य देवी-देवताओं के द्वारा बड़ा प्रयत्न करने के बाद वह बाहर निकली और फिर से संसार में प्रकाश हुआ और व्यवस्था स्थापित हुई। सूर्य देवी ने अपने पोते

निनिगी (Ninigi) को जापान के द्वीप-समूह पर शासन करने के लिए भेजा और उसे एक दर्पन दिया जिसमें वह जब चाहे, सूर्यदेवी को देख सकता था और परामर्श कर सकता था। निनिगी ने वह दर्पण अपने बेटे जिम्मू तेनो (Jimmu Tenno) को दिया। वह दर्पण अब शिन्तोमत के सबसे अधिक पवित्र एवं सम्मान आईस (Ise) के मन्दिर में स्थित है। उसके साथ ही दो अन्य पवित्र वस्तुएं—एक तलवार और एक हीरा—वहाँ रखी हैं। ये तीनों वस्तुएं शिन्तोओं द्वारा तीन पवित्र कोश समझे जाते हैं।

कोजीकी और निहोंगी में इन सब देवी-देवताओं को एवं दिव्य गुण सम्पन्न श्रेष्ठ मनुष्यों को भी 'कामी' शब्द से अभिहित किया गया है और शिन्तो देवताओं की पूजा-अर्चना अथवा कामी-नो-मिची की व्यवस्था तीन रूपों में की गई है। राजकीय शिन्तो (State Shinto), पारिवारिक शिन्तो (Domestic Shinto) और साम्प्रदायिक शिन्तो। राजकीय अथवा राष्ट्रीय शिन्तो के रूप में जापानी लोग एक परिवार हैं और सभी अपने आपको अमेतरासु (Amaterasu) अथवा सूर्यदेवी (Sun goddess) का तथा सूसा-नो-ओ का वंशज मानते हैं तथा शिन्तो मन्दिरों में अमेतरासु अथवा सूर्यदेवी की पूजा के लिए जाते हैं। सबसे अधिक सम्मान्य एवं पवित्र मन्दिर ईसा (Ise) का मन्दिर माना जाता है।

पारिवारिक शिन्तो (Domestic Shinto) का सम्बन्ध व्यक्तिगत पूजा से है। इसकी व्यवस्था घर में ही की जाती है। इसके लिए प्रत्येक घर में स्थान निश्चित रहता है जो पारिवारिक स्थिति के अनुसार होता है। धनवान परिवारों में इसके लिए पृथक् कमरा निश्चित होता है और सामान्य स्थिति के परिवारों में घर की कोई अलमारी अथवा कोना आदि। वहाँ सूर्यदेवी के प्रतीक रूप में एक दर्पण रखा रहता है। उसके साथ एक लकड़ी की टिकिया रखी रहती है जिस पर किसी आदरणीय पूर्वज का नाम लिखा रहता है। साथ ही एक काग़ज़ की टिकिया पर स्थानीय देवी-देवता का नाम लिखा रहता है। इसके अतिरिक्त किसी राष्ट्रीय वीर, देवी-देवता, कन्फ्यूशियस अथवा बोधिसत्त्व की मूर्तियाँ रहती हैं। विशेष अवसरों पर वहाँ बत्तियाँ जलाई जाती हैं तथा चावल, फूल, फल आदि की भेंट चढ़ाई जाती है। किसी के मर जाने पर उसका मृतक संस्कार या तो घर के अन्दर बने हुए शिन्तो मन्दिर अथवा पूजा स्थान के सामने होता है और या भगवान् बुद्ध की मूर्ति के सामने। घरेलू पूजास्थान कामीदाना (Kamidana) कहा जाता है।

साम्प्रदायिक शिन्तो के रूप में मुख्य पाँच साम्प्रदायिक वर्ग हैं—(१) विशुद्ध शिन्तो सम्प्रदाय (Pure Shinto Sects), (२) कन्फ़्यूशियन सम्प्रदाय (Confucian Sects), (३) पार्वत्य सम्प्रदाय (Mountain Sects), (४) पवित्र सम्प्रदाय (Purification Sects) और (५) निष्ठा-आरोग्य सम्प्रदाय (Faith-Healing Sects)। इन साम्प्रदायिक वर्गों के अनेक अवान्तर भेद हैं। जैसे विशुद्ध शिन्तो सम्प्रदाय के तीन वर्ग हैं—शिन्तो क्यो (Shinto Kyo), शिनरी क्यो (Shinri Kyo) और तैशु क्यो (Taishu Kyo)। कन्फ़्यूशियन सम्प्रदाय दो हैं—शूसी हा (Shusei Ha) और तैसी क्यो (Taisei Kyo)। पार्वत्य सम्प्रदाय तीन हैं—जिक्को क्यो (Jikko Kyo), फ्यूसो क्यो (Fuso Kyo) और आनतेक अथवा मितेक क्यो (Ontake Kyo or Miteke Kyo)। पवित्र सम्प्रदाय दो हैं—शिन्शू क्यो (Shinshu Kyo) और मिसोगी क्यो (Misogi Kyo)। निष्ठा-आरोग्य सम्प्रदाय तीन हैं—कुरोजुमी क्यो (Kurozumi Kyo), मांको क्यो (Monko Kyo) और तेनरी क्यो (Tenri Kyo)। विस्तारभय से इन सबका विस्तृत विवरण नहीं दिया जा रहा।

सामान्य सिद्धान्त

शिन्तो सम्प्रदाय के साधारणतया निम्नलिखित दस आचरणीय सिद्धान्त हैं:—

(१) देवताओं की इच्छा का उल्लंघन मत करो।
(२) अपने पूर्वजों के प्रति अपने कर्तव्यों को मत भूलो।
(३) राज्य की आज्ञाओं का उल्लंघन मत करो।
(४) देवताओं की नेकी को मत भूलो जिसके द्वारा विपत्तियाँ दूर होती हैं और रोगों का परिहार होता है।
(५) यह मत भूलो कि यह संसार एक विशाल परिवार है।
(६) अपने व्यक्तित्व की सीमितता को मत भूलो।
(७) दूसरों के क्रुद्ध होने पर भी क्रुद्ध मत होवो।
(८) अपने काम में और अपना कर्तव्य पालन करने में आलस्य मत करो।
(९) धार्मिक शिक्षाओं में दोष मत निकालो।
(१०) विदेशी शिक्षाओं से प्रभावित मत होवो।

१०

ईसाई मत (Christianity)

ईसाई मत को अंग्रेज़ी में क्रिश्चियनिटी अथवा क्रिस्ट्यनिटी (Christianity) कहा जाता है। इस मत को नसरानी मत भी कहते हैं। इसके प्रवर्तक जीसस क्राईस्ट (Jesus Christ) थे जिन्हें भारत में यसू मसीह अथवा ईसा मसीह के नाम से पुकारा जाता है। जीसस क्राईस्ट अथवा यसू मसीह का जन्म बनिस्राईल जाति में हज़रत मूसा से उन्तीसवीं और हज़रत दाऊद (Devid) से अट्ठाईसवीं पीढ़ी में हुआ। उनके पिता का नाम जोसफ़ (Joseph) और माता का मेरी (Mary) था। जोसफ़ यहूदी था और बढ़ई का काम करता था। बाईबल में जीसस को भी यहूदियों का बादशाह कहा गया है और उन्होंने वस्तुतः यहूदियों के सुधार के लिए कार्य किया था और अपना बलिदान दिया था। बाईबल में वे स्वयं कहते हैं कि "मैं इस्राईल के परिवार की खोई हुई भेड़ों के अतिरिक्त और किसी के पास नहीं भेजा गया।"[१] उन्होंने अपने शिष्यों को भी यही आज्ञा दी थी कि "तुम इस्राईल घराने की खोई हुई भेड़ों के पास ही जाना"।[२]

ईसाइयों के मतानुसार मेरी जोसफ के साथ विवाह और समागम से पूर्व ही पवित्र शक्ति (Holy Ghost) की शक्ति से गर्भवती हो गई थी। इस प्रकार वे कँवारी के लड़के थे और मेरी को आदरपूर्वक होली वर्जिन (Holy Virjin) कहा जाता है। जिस समय जीसस क्राईस्ट का जन्म हुआ उस समय उनके देश की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति ठीक नहीं थी। यहूदी लोग रूढ़िवादी और अन्धविश्वासी हो चुके थे। वे मन्दिरों में अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों की कुर्बानी देते थे। यहूदी पुजारी मनमाने अत्याचार करते थे। उनकी प्रत्येक बात ईश्वरीय आज्ञा समझी जाती थी। उनके सामने कोई भी व्यक्ति मुंह खोलने का साहस नहीं कर सकता था। उनके अतिरिक्त वहाँ पारसी,

१—मैथ्यू०, १५/२५
२—वही, १०/५-६

रोमन और मिश्री लोग भी थे। पारसी मोक्ष-प्राप्ति के लिए अग्नि और सूर्य की पूजा करते थे। रोमन और मिश्री मूर्तिपूजक थे। वे अनेक देवताओं की मूर्तियों की पूजा करते थे। जीसस क्राईस्ट ने प्रचलित कुरीतियों को दूर करने के लिए तथा दया अहिंसा आदि की शिक्षा देने के लिए प्रचार किया। जीसस के सिद्धान्त मूल रूप में, वही थे जो यहूदी मत के थे, परन्तु उन पर बौद्धधर्म का प्रभाव था।

जीसस ने अपना प्रचार-कार्य तीस वर्ष की आयु में आरम्भ किया था। बारह वर्ष से लेकर तीस वर्ष तक के उनके जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। यह अठारह वर्ष का समय उनका विदेश-भ्रमण का समय माना जाता है। अनेक विद्वानों का अनुमान है कि इस समय का अधिकांश भाग उन्होंने भारतवर्ष में बिताया और बौद्ध धर्म से प्रभावित हुए अथवा विभिन्न देशों में प्रचारार्थ घूमते हुए किसी बौद्ध धर्माचार्य या बौद्ध भिक्षुओं के सम्पर्क में रहे। श्री पाल ब्रंटन ने इस बात पर जोर दिया है कि जीसस लगभग तेरह वर्ष की आयु में सच्चे धर्म की खोज में घर से निकल पड़ा था। उन्होंने कुछ समय तक मिश्र में रहकर वहाँ प्रचलित धार्मिक मतों और विश्वासों का अध्ययन किया। सिकन्दरिया (Alexandria) में उनका योगियों, दार्शनिकों और विद्यार्थियों से साक्षात्कार हुआ। वहाँ ही उनका एक भारतीय व्यापारी से परिचय हुआ जिसके साथ वे दक्षिण भारत पहुँचे तथा अट्ठाईस वर्ष की आयु तक भारत में ही रहकर और विभिन्न प्रान्तों में घूम-घूमकर शिक्षा ग्रहण करते रहे। कुछ समय तक उन्होंने अपने शिक्षक तथा उनके अन्य शिष्यों के साथ हिमालय की एक गुहा में योग-साधना भी की। उन्तीस-तीस वर्ष की आयु में वे वापिस लौटे।[१] बत्तीस-तेंतीस वर्ष की आयु में उन्हें मृत्यु दण्ड देकर मार दिया गया। उनके उपदेश और विचार बाईबल (New Testament) में संग्रहीत हैं। परन्तु इनका संकलन बाद में उनके शिष्यों द्वारा किया गया। उन्होंने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी। उनका सारा उपदेश मौखिक था। कई विद्वानों का जिनमें अनेक यूरोपीय ईसाई विद्वान् भी सम्मिलित हैं, कहना है कि ईसाई मत का प्रवर्तन एवं प्रचार भी वास्तव में जीसस की मृत्यु के बाद ही हुआ और इस दिशा में सेंट पाल (St. Paul) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

१. Paul Brunton Ph. D.; The Inner Reality; The Mystery of Jesus, pages २७३-२७६।

ईसाई मत का वास्तविक प्रचार ईसा की चौथी सदी के पूर्वार्ध में इटली के राजा कॉन्सटेन्टाईन (Constantine) के ईसाई बनने पर हुआ। उसने समस्त रोमन राज्य को ईसाई बना दिया।

बाईबल (न्यू टैस्टामैण्ट)

ईसाई मत की धार्मिक पुस्तकों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक वह भाग जो इल्हामी अथवा श्रुति कहलाता है और दूसरा वह जो अश्रुत कहलाता है। इल्हामी अथवा ईश्वरीय पुस्तक बाईबल (Bible) है। बाईबल दो मुख्य भागों में विभक्त है—ओल्ड टैस्टामैण्ट (Old Testament=पुराना अहदनामा) और न्यू टैस्टामैण्ट (New Testament=नया अहदनामा)। ओल्ड टैस्टामैण्ट को हिब्रू बाईबल (Hebrew Bible) भी कहा जाता है। यह यहूदियों की धर्म पुस्तक है और इसे ही, जैसा कि पीछे बताया जा चुका है, वे तौरेत (Torate) कह कर भी पुकारते हैं। इसका संक्षिप्त परिचय यहूदी मत में दिया जा चुका है। न्यू टैस्टामैण्ट ईसाई मत की ईश्वरीय अथवा इल्हामी पुस्तक है। परन्तु जैसा कि पीछे बताया गया है हजरत जीसस क्राईस्ट ने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी थी और न ही उन्होंने यह दावा किया था कि कोई पुस्तक उन पर अवतरित हुई है। उनका सारा उपदेश मौखिक था। ईसाई लोग सम्भवतः बाईबल को इसलिये ईश्वरीय पुस्तक मानते हैं कि इसमें जीसस के उपदेश लिखे हैं और उन्होंने अपने शिष्यों को कहा था "मैं केवल उन्हीं बातों का प्रचार करता हूँ जो मेरे पिता ने मुझे सिखाई थीं।" बाईबल की रचना उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्यों द्वारा की गई। यह भी कहा जाता है कि बाईबल की विभिन्न प्रतियों की रचना दूसरी ईसवी शती में हुई थी। उससे पहले ईसाई लोग जीसस की शिक्षाओं को जबानी स्मरण रखते थे और जबानी ही उनका प्रचार करते थे। दूसरी शती में सर्वप्रथम लोगों से पूछ-पूछकर बाईबल को विभिन्न पुस्तकों का रूप दिया गया। सेंट ल्यूक़ अथवा लूक़ा (St. Luke) का कहना है—"मैंने उचित समझा कि सब बातों का क्रम आरम्भ से ठीक-ठीक पूछकर उनको तेरे लिये क्रम से लिखूं।"[1] शिष्यों द्वारा केवल मौखिक रूप में प्रचार किये जाने के कारण तथा लगभग सौ-सवा

१. लूका, १/१-३

सौ वर्ष बाद लिखे जाने के कारण सम्भवत: जीसस के मूल उपदेशों में भी कुछ न कुछ अन्तर अवश्य आ गया होगा। सेंटपाल के उपदेश तो स्पष्टत: जीसस के उपदेशों से भिन्नता रखते हैं।[१]

कहा जाता है कि आरम्भ में बाईबल (न्यू टैस्टामैण्ट) की चौदह विभिन्न प्रतियां थीं जिनमें बहुत पाठभेद था। उनमें सैद्धान्तिक बातों में भी भिन्नता थी। इसलिए उन्हें सन्दिग्ध दृष्टि से देखा जाता था। अत: उनके परीक्षण और पर्यन्वेक्षण के लिए भिन्न-भिन्न समयों में छ: सभाएं की गईं और विभिन्न बाईबलों के पाठ की यथार्थता पर विचार किया गया। पहली सभा ३२५ ई० नाइस (Nicaea) नामक नगर में हुई। दूसरी सभा सन् ३६४ ई० में हुई। इसे टोडिसा सभा कहा जाता है। तीसरी सभा सन् ३९७ ई० में कार्थेज में हुई जिसे कार्थेज सभा (Carthage Council) का नाम दिया जाता है। इसके पश्चात् तिरलो, फ्लोरेंस, तिरन्थ और बेसिल नामक अन्य सभाएं भी भिन्न-भिन्न समयों पर हुईं। सन् १५३० ई० में प्रोटैस्टैण्ट सम्प्रदाय वालों ने सभा बुलाई। उसके बाद सन् १८७० ई० में वैटिकन सभा (Vatican Council) हुई। सन् १९२० और १९२५ ई० में स्टॉक होम में कान्फ्रेंसें हुईं। इन सभाओं के मुख्य उद्देश्य तीन थे—(१) बाईबल का स्वरूप निश्चित और उसे अन्तिम रूप देने का यत्न करना, (२) ईसाई मत के सिद्धान्तों का निर्णय करना और (३) विभिन्न ईसाई सम्प्रदायों में एकता स्थापित करते हुए उन्हें एक प्लेटफार्म पर लाने का यत्न करना। परन्तु इनमें से किसी भी उद्देश्य में अब तक सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है और कोई भी अन्तिम निर्णय नहीं हो सका है। जहां तक बाईबल के स्वरूप का सम्बन्ध है, इन सभाओं में बड़े वाद-विवाद के बाद चार प्रतियों को प्रामाणिक स्वीकार किया गया—(१) सेंट मैथ्यू (St. Methew) की बाईबल (मती की इन्जील), (२) सेंट मार्क (St. Mark) की बाईबल (मरकस की इंजील), (३) सेंट लूका (St. Luke) की बाईबल (लूक़ा की इंजील) और (४) सेंट जॉह्न (St. John) की बाईबल (युहना की इंजील)। इनमें से पहली में २८ अध्याय हैं, दूसरी में २६, तीसरी में २४ और चौथी में २१। रचना काल की दृष्टि से इनमें से सेंट मार्क की बाईबल को सबसे पुरानी समझा जाता है। उसके पश्चात् सेंट लूक़ा की बाईबल लिखी गई। तदनन्तर सेंट मैथ्यू की बाईबल बनी और सबके पश्चात् सेंट जॉह्न की। परन्तु इनमें

१. St. Paul: I Corinthians, १५/१३-१४, ३०, ५१-५३; २/२।

से क्राईस्ट के समय में अथवा उनकी मृत्यु के तुरन्त पश्चात् लिखी हुई कोई भी नहीं है। इन सबकी सर्वमान्यता के सम्बन्ध में अब भी मतैक्य नहीं है। श्री पाल ब्रंटन का कहना है—"न्यू टैस्टामैण्ट को पढ़ते समय तुम्हें अनुभव करना चाहिये कि इसके सभी भाग समान प्रेरणा देने वाले और समान महत्त्व के नहीं हैं। चूंकि उनकी रचना के बाद बहुत-सा समय बीत चुका है इसलिए इन धर्मग्रन्थों में प्रक्षेप, वृद्धि, अशुद्ध अनुवाद और अन्यथा कथन (गलतबयानी) भी है। इन तथ्यों के आधार पर आप समझ सकते हैं कि इस धर्मग्रन्थ में लिखा हुआ प्रत्येक शब्द आवश्यक रूप से पवित्र नहीं है। और इसलिए तुम्हें यथार्थ अंश को छांटने के लिए अपनी अन्तः प्रेरणा और आलोचनात्मक शक्ति का उपयोग करना होगा।"[१]

श्री आर्ची जे० बाह्म (Archie J. Bahm) ने अपनी पुस्तक 'विश्व के जीवित धर्म' (The world's living Relisions) पृ० २६८ से २७६, में नाईस (Nicaea) सभा में तथा परवर्ती सभाओं में उठाये गये एवं निर्धारित किये गये प्रश्नों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। तदनुसार उस सभा में निम्न-लिखित प्रश्नों पर विचार किया गया। (क) ईश्वर (God), क्राईस्ट (Christ) और पवित्र आत्मा (Holy Spirit or Holy Ghost) नामक तीन तत्त्वों (Trinity) की प्रामाणिकता से सम्बन्धित मतभेद, क्योंकि अनेक ऐसे पादरी थे जो क्राईस्ट को ईश्वर का बेटा नहीं मानते थे और न ही पवित्र आत्मा (Holy Ghost) के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे। वे क्राईस्ट को ईश्वर मानने को भी तैयार नहीं थे तथा पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे। एरियस (Arius—C. २५६-३३६) का कहना था कि ईश्वर एक है और सूली (cross)

---

१. You should realize in reading a book Bible the New Testa-Ment that all parts are not equal in inspiration & value. Because of time which has elepsed since they were compiled we find in these scriptures interpolations, addition, mistranslations even misrepresentations. In view of these facts, you will understand that every word embodied in a scripture is not necessarily sacred, and you should, therefore, use your intuition & your critical faculty to sift what really matters from what does not. The Inner Reality, chapter X1V, page 265.

पर नहीं मर सकता। जीसस क्राईस्ट की सूली पर मृत्यु हुई, इसलिए वह ईश्वर नहीं हो सकता, वरन् वह भी अन्य मनुष्यों के समान ईश्वर द्वारा उत्पन्न किया हुआ पुरुष था जिसे असाधारण महापुरुष कहा जा सकता है, परन्तु ईश्वर या ईश्वर का बेटा नहीं। पैलाजियस (Pelagius) ने इस सिद्धान्त को मानने से भी इन्कार कर दिया कि ईश्वर ने मनुष्य पाप करने के लिए उत्पन्न किया और फिर उसे दण्ड दिया। फिर भी बहुमत से जिन सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया वे इस समय उपलब्ध बाईबल की चारों प्रतियों में संकलित हैं।

बाईबल की उपलब्ध चारों प्रतियों का संक्षिप्त विषय तथा घटनाक्रम निम्नलिखित है।

जीसस क्राईस्ट की उत्पत्ति तथा उसकी बारह वर्ष की आयु तक की घटनाएं। तीस वर्ष की आयु में जीसस क्राईस्ट के अपने देश में लौटकर प्रचार करना; शिष्य बनाकर उन्हें इधर-उधर प्रचार के लिए भेजना; चमत्कार दिखाना; पशु-पक्षियों की हत्या न करने तथा खतना न कराने का उपदेश देना; जीसस को ईश्वर का इकलौता बेटा मनवाना तथा उसके साथ प्रेम रखना; सदाचार की बातों का वर्णन करना; जीसस का बन्दी बनना, फांसी पाना और कब्र में दबाया जाना ; मरने के पश्चात् जीवित हो जाना; शिष्यों से मिल कर बातचीत करना और फिर आकाश पर चढ़कर ईश्वर की दाहिनी ओर बैठना आदि।

बाईबल के अनुसार ईसाई मत के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं—

१ जीसस क्राईस्ट ईश्वर का इकलौता बेटा है जिसे उसने (ईश्वर ने) अपना अन्तिम पैग़ाम्बर बना कर संसार में भेजा था। उनके पश्चात् कोई नबी, रसूल या पैग़ाम्बर उत्पन्न नहीं हुआ।

२ बाईबल ईश्वरीय पुस्तक है और इसलिए अत्यन्त पवित्र है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरी पुस्तक ईश्वरीय नहीं है।

३ जीसस को ईश्वर का इकलौता बेटा और अन्तिम पैग़ाम्बर मान कर उस पर ईमान लाकर पापों से छूट कर स्वर्ग प्राप्त किया जा सकता है।

४ पिता (ईश्वर), पुत्र (जीसस) और पवित्रात्मा (Holy Ghost) नामक तीन तत्त्वों में आस्था रखनी चाहिये।

५ सब प्राणियों पर दया का भाव रखना चाहिये। पशु-पक्षियों का वध करना बुरा है। इससे ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन होता है।

६ खतना कराना ठीक नहीं। यह ईश्वरीय आज्ञा के विरुद्ध है। हृदय की पवित्रता ही वास्तविक खतना है।

७ सिब्त (Sabbath day) के दिन कार्य करना बुरा नहीं है। क्योंकि ईश्वर भी प्रतिदिन कार्य करता है।

८ ईश्वर की सत्ता और उसके गुण, कर्म तथा स्वभाव; संसार की उत्पत्ति और प्रलय; हिसाब का दिन, मुर्दों का जीवित होना; सब के कर्मों का हिसाब लेकर उन्हें स्वर्ग या नरक में भेजना; स्वर्ग और नरक की सत्ता आकाश पर मानना; स्वर्ग में सब प्रकार के सुख और नरक में कठिन दुःखों की प्राप्ति; छः दिन में सृष्टि का निर्माण; फरिश्तों, शैतान, भूत, प्रेत, भाग्य, मनुष्य की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध में ईसाइयों के भी वही सिद्धान्त हैं जो यहूदियों के हैं। वस्तुतः हज़रत ईसा (जीसस क्राईस्ट) ने गम्भीर दार्शनिक तत्त्वों की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। उन्होंने तत्कालीन समाज को जीवन को उच्च बनाने की ही शिक्षा दी थी। वे अहिंसा और दया के प्रचार द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दूर करना चाहते थे। परन्तु यह अत्यन्त खेद का विषय है कि उन्हीं के अनुयायियों ने उनके तथा ईसाई मत के नाम पर अत्यधिक रक्तपात किया जिससे यूरोपीय इतिहास के पृष्ट रंगे हुए हैं।

इसलाम

'इसलाम' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ इसलाम धर्मानुयायियों के अनुसार "शान्ति में प्रवेश करना है"।[1] तदनुसार मुस्लिम अथवा मुसलमान उस व्यक्ति को कहा जाता है जो "परमात्मा और मनुष्य के साथ पूर्ण शान्ति रखता है"।[2] 'बृहत् हिन्दी कोश' में इसलाम शब्द का अर्थ लिखा गया है— "स्वीकार करना; ईश्वरेच्छा के सामने सिर झुका देना; मुहम्मद का चलाया हुआ धर्म; मुसलमानों की समष्टि आदि"। इससे ज्ञात होता है कि इसलाम वह मत है जिसके द्वारा मनुष्य अल्ला (ईश्वर) की शरण लेता है और मनुष्यों के प्रति शान्तिपूर्वक अहिंसा और प्रेम का व्यवहार करता है। इसलाम के सच्चे अनुयायियों को इस प्रवृत्ति को समझना और अपनाना चाहिए।

इसलाम के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद साहब थे जिनका जन्म ११ नवम्बर, सन् ५६९ ई० को तदनुसार १२ रबीउल अव्वल[3] सोमवार को अरब के प्रसिद्ध नगर मक्का में हुआ। आपके पिता का नाम अब्दुल्ला था और दादा का अब्दुल मुत्तलिब। आपकी माता का नाम श्रीमती आमिना था। आपका वंश कुरैश था जो उस समय अरब के प्रमुख वंशों में माना आता था। जिन दिनों अरब में हज़रत मुहम्मद ने अपने नये मत का प्रचार किया उन दिनों भारतवर्ष में सम्राट् हर्षवर्धन तथा महाराज पुलकेशी का राज्य था।

हज़रत मुहम्मद का आरम्भिक जीवन कठिनाइयों में बीता। उनके पिता

---

१. मोहम्मद अली (रिलीजन ऑफ इस्लाम)

२. वही

३. पैंग्विन बुक्स लिमिटिड, इग्लैंड द्वारा प्रकाशित 'इसलाम' (पृ० २३) और 'दि कोरान' (पृ० ९) में हज़रत मुहम्मद का जन्म सन् लगभग ५७० दिया गया है। जैको पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई द्वारा प्रकाशित 'ग्लिम्पसिस ऑव वोर्ल्ड रिलीजन्स' (पृ० १९५) में हज़रत मुहम्मद की जन्मतिथि २० एप्रिल, ५७१ ई० लिखी हुई है।

का देहान्त उनके जन्म से पूर्व ही हो गया था। जब वे छः वर्ष के थे तब उनकी माता का भी देहान्त हो गया। इसलिए उनके पालन-पोषण का भार उनके दादा पर पड़ा और दादा की मृत्यु के पश्चात् उनके चाचा अबुतालिब पर। चाचा के पास रहकर बालक मुहम्मद ने वाणिज्य की शिक्षा प्राप्त की और कुशल व्यापारी बन गया। खदीजा नामक एक अमीर विधवा ने उसे अपना मुनीम बना लिया और बाद में उससे विवाह कर लिया। उस समय मुहम्मद की आयु २५ वर्ष की थी और खदीजा की ४० वर्ष थी। व्यापारिक जीवन के साथ-साथ ही मुहम्मद भक्ति-भाव में अनुरक्त थे। व्यापार के लिए विभिन्न देशों में घूमने से उन्हें तत्कालीन राजनैतिक और धार्मिक स्थितियों का भी पूर्ण परिचय प्राप्त हो गया। उन्होंने नये धर्म की स्थापना का निश्चय कर लिया। हिरा पर्वत की गुफा में उन्हें इसलाम होना आरम्भ हुआ। मक्का में जब उनकी बातों का विरोध हुआ, तब वे अपने साथियों समेत भाग कर मदीना चले गये। बाद में उन्होंने मक्का को जीत लिया। ६३२ ई० में उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के समय मक्का और मदीना में उनके मत का प्रचार हो चुका था।

इस्लाम के मूल ग्रन्थ दो हैं—'कुरआन' और 'अल-हदीस'।

कुरआन शरीफ

'कुरआन शरीफ़' जिसे सम्मानार्थ 'कुरआन करीम' और 'कुरआन मजीद' भी कहा जाता है, इसलाम की सबसे अधिक मान्य और पवित्र पुस्तक समझी जाती है। मुसलमान इसे इलहामी ग्रन्थ मानते हैं जिसमें, मुसलिम परम्परा के अनुसार, मुहम्मद साहब के पास ईश्वर द्वारा भेजे गये सन्देश और उपदेश संकलित हैं। मुसलमानों का विश्वास है कि इस्लाम का प्रवर्तन हज़रत मुहम्मद ने सोच-विचार कर नहीं किया था, बल्कि इसका उन्हें इलहाम हुआ था। वे उम्मी (अनपढ़ और अशिक्षित) थे। उन्होंने कुरआन में स्वयं अपने को उम्मी कहा है।[1] परन्तु यूरोपीय विद्वान् इस बात से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार

---

१. सूरत ७ (अल-आराफ़) आयत १५७-१५८; सूरत २९ (अल-अनकबूत), आयत ४८।

हज़रत मुहम्मद एक कुशल राजनीतिज्ञ और सुशिक्षित व्यापारी थे। उन्होंने केवल नम्रता दिखाने के लिए अपने आपको उम्मी अर्थात् अशिक्षित कहा है। उनका अपने आपको अशिक्षित कहना सम्भवतः वैसा ही है जैसा महाकवि तुलसीदास का अपने आपको "कवि न होउँ नहिं बचनप्रबीनू, सकल कला सब विद्याहीनू" तथा "कवि न होउँ नहिं चतुर कहाउँ" आदि कहना।

'कुरआन' में संकलित सूरतों, आयतों और अक्षरों की संख्या के विषय में मुस्लिम विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। 'तारीखुल कुरआन'[1] के अनुसार कुरआन में संकलित सूरतों की कुल संख्या एक सौ चौदह है। कुल आयतें छः हज़ार हैं, कल्यात ७७६३४ हैं और अक्षर ३२३०१५ हैं। इन सबको तीस पाटों में विभक्त किया गया है। 'सबातिउल कुरआन'[2] में इमाम सैयद हमीद ने आयतों की कुल संख्या ६६६६० (छः हज़ार छः सौ छयासठ) बताई है। उनके अनुसार कल्मात की संख्या ८६४३० है और अक्षरों (हरूफ) की संख्या ३९४०३३ है। 'तफ़सीर हक्कानी'[3] में मौलाना अबू मुहम्मद अब्दुल हक़ ने सम्पूर्ण कुरआन में सूरतें ११४ और आयतें जमहूर के अनुसार ६६६६, कूफ़ा के अनुसार ६२३६ और मदीना वालों के अनुसार ६२१४ कही हैं। अल्लामा जलालुद्दीन सियूती ने अपनी पुस्तक 'तफ़सीर इत्तिकान'[4] में कुरआन की सूरतों, रवायतों, वाक्यों और अक्षरों पर विस्तार से प्रकाश डाला है और पुरानी रवायतों से उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। तदनुसार अबू शैख की रवायत के अनुसार कुल सूरतें ११३ हैं, क्योंकि वह अल-अनफ़ाल और अल-बराअत दोनों को एक ही सूरत मानता था; इब्ने मंसऊद के कुरआन में ११२ सूरतें हैं, क्योंकि वह मऊज़तैन (वर्तमान कुरआन की अन्तिम दो सूरतों) को कुरआन में लिखना उचित नहीं समझता था; उवय्य के कुरआन में ११५ सूरतें हैं, क्योंकि उसने अन्त में अलहकर और अल-खला नामक दो सूरतें और बढ़ाई हैं और अल-फ़ील तथा अल-लईलाफे नामक दो सूरतों को एक ही गिना है; जफ़र सादिक ने वज्जुहा और अलम नशरह को एक ही सूरत गिना है। इस सम्बन्ध में अल-बराअत का जिसे अत्-तौबा भी कहा जाता है, विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। सम्पूर्ण

१. तारीखुल कुरआन, पृ० ४७
२. सबातिउल कुरआन, पृ० ३५-३६
३. तफ़सीर हक्कानी, प्रकरण, १९, पृ० १५१
४. तफ़सीर इत्तिकान, प्रकरण १९, पृ० १७४-१७७

कुरश्रान में अकेली यह एक ऐसी सूरत है जिसके आरम्भ में 'बिस्मिल्लाह' इत्यादि नहीं लिखा गया, अन्य सभी सूरतों का आरम्भ 'बिस्मिल्लाह' से होता है। विवेचकों के मन में सन्देह होता है कि कहीं यह सूरत प्रक्षिप्त तो नहीं है। स्वयं मुस्लिम विवेचकों में भी आरम्भ से ही इसकी चर्चा रही है। अबू शैख की रवायत के अनुसार अल-अनफ़ाल और अल-बराअत दोनों एक ही सूरत है, इस लिए अल-बराअत के आरम्भ में 'बिस्मिल्लाह' को अलग से फिर लिखने की आवश्यकता नहीं थी। इब्ने अब्बास के पूछने पर हज़रत अली ने उत्तर दिया था कि वह अमान और बराअत है जो तलवार के साथ उतरी थी। अल्लामा सियूती ने मालिक की रवायत के आधार पर लिखा है कि इस सूरत (बरआत) का आरम्भिक भाग नष्ट हो गया जिससे उसके साथ ही 'बिस्मिल्लाह' भी जाता रहा।

अल्लामा सियूती ने अपनी पुस्तक 'तफ़सीर इत्तिकान,'[1] में बकर, आले इमरान, अन्निसा, अलमाएदा, अनआम, अनफ़ाल आदि सूरतों में आयतों की संख्या के सम्बन्ध में पाये जाने वाले मतभेद का विस्तार से वर्णन किया है। जैसे—सूरत बकर में कुछ लेखकों ने २८५ आयतें मानी हैं, कुछ ने २८६ और कुछ ने २८७; आले इमरान में कुछ ने २०० आयतें कहीं हैं और कुछ ने १९९; अन्निसा में कुछ ने १७५ आयतें कही हैं, कुछ ने १७६ और कुछ ने १७७; अलमाएदा में कुछ ने १२० आयतें कही हैं, कुछ ने १२२ और कुछ ने १२३; अनफ़ाल में कुछ ने ७० आयतें कही हैं, किसी ने ७५, किसी ने ७६ और किसी ने ७७ आदि। श्री देवप्रकाश का अपनी पुस्तक 'कुरआन परिचय' में कहना है कि आयतों का संख्या सम्बन्धी यह मतभेद प्रत्येक सूरत में है। मुहम्मद अजमल खां ने अपनी पुस्तक 'तरतीब नज़ूल कुरआन करीम' में विभिन्न सम्पादकों द्वारा सम्पादित तथा अनुवादित कुरआन की तालिका दी है और उसमें विभिन्न सम्पादकों द्वारा दी गई आयतों की संख्या में अन्तर दिखाया गया है। पं० सत्यदेव जी ने भी अपनी पुस्तक 'कुरआन में परिवर्तन' के पृष्ठ ३८-३९ तथा पृष्ठ ३४ पर आयतों और अक्षरों की विभिन्न संख्याएं दी हैं जो निम्नलिखित हैं :—

---

१. तफ़सीर इत्तिकान, प्रकरण १९, पृ० १८२-१८४.

आयत-संख्या

(१) दुआए मुतबर्रक, कसीद, तुलकिराअत, उम्द, तुलब्यान, फ़ी तफ़सीरिल्कुरान और रमूज़ुल्कुरान आदि के मतानुसार आयत संख्या ६६६६
(२) इत्तेकान की उलुमिल्कुरान ,, ,, ,, ६२१४
(३) मदनियों ,, ,, ,, ६२१४
(४) मक्कीयों ,, ,, ,, ६२१२
(५) शामियों ,, ,, ,, ६२५०
(६) बसरियों ,, ,, ,, ६२१६
(७) ईराकियों ,, ,, ,, ६२१४
(८) कूफ़ियों ,, ,, ,, ६२३६
(९) अब्दुल्ला इब्ने मसऊद ,, ,, ,, ६२१८
(१०) इब्ने अब्बास ,, ,, ,, ६६१६
(११) अबूमन्सूर दव्वान ,, ,, ,, ६०००
(१२) मुहम्मद याकूब कुलेनी ,, ,, ,, १७०००

इसी प्रकार कुछ अन्य सम्पादकों ने कुरआन की आयतों की संख्या ६२०४, ६२१९ और ६२२५ भी बताई है।

अक्षर संख्या

(१) इब्ने अब्बास के मतानुसार अक्षर-संख्या	३२३६७१	(सियूती)
(२) उमर इब्ने खत्ताब के मतानुसार अक्षर-संख्या	१०२७०००	
(३) अब्दुल्ला इब्ने मसऊद के मतानुसार ,,	३२२६७१	
(४) मुजाहिद ,, ,, ,,	३२११२१	सिराजुल-कारी
(५) अब्दुल्ला इब्ने मसऊद ,, ,, ,,	३२२६७०	उम्द : तुलबयान
(६) कसीद : तुलकिराअत ,, ,, ,,	३०२६७०	

(७) उम्द : तुलबयान „ „ „ ३५१४८२
(८) सिराजुलकारी „ „ „ ३२०२६७
(९) दुआए मुतबर्रक „ „ „ ४४५४६३

सभी सूरतों और आयतों का आकार एक-सा नहीं है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि सभी का इलहाम एक ही समय में और नियमित ढंग से नहीं हुआ। कई सूरतों में आयतों की संख्या पौने तीन सौ तक है और कइयों में तीन, चार अथवा पांच। इस समय कुरआन शरीफ जिस क्रम में उपलब्ध है उसमें बड़े आकार वाली सूरतें पहले रखी गई हैं और सबसे छोटे आकार वाली ग्रन्थ के अन्त में हैं। मुस्लिम परम्परा के अनुसार कुल एक सौ चौदह सूरतों में से उन्तीस का इलहाम मदीना में हुआ और शेष पचासी का मक्का में। कुछ सूरतें ऐसी भी हैं जिनका कुछ अंश मदीना में आविर्भूत हुआ और कुछ मक्का में। हज़रत मुहम्मद को इनका इलहाम होना चालीस वर्ष में आरम्भ हुआ था और त्रेसठ वर्ष की अवस्था में उनके जीवन के अन्तिम दिनों तक होता रहा। सबसे पहला इलहाम (Revelation) मक्का से तीन मील की दूरी पर हिरा नामक पर्वत की गुहा में हुई, जहां वह एकान्त में अल्लाह (ईश्वर) का ध्यान करने के लिये गये थे।

श्री जे० एम० रॉडवेल का विश्वास है कि विविध सूरतों का इलहाम अथवा आविर्भाव हज़रत मुहम्मद साहब के मानसिक विकास और परिवर्तन का तथा उनके जीवन को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों का द्योतक है। श्री रॉडवेल ने सारी सूरतों को तीन भागों में विभक्त किया है—आरम्भिक, मध्यवर्ती और अन्तिम। आरम्भिक सूरतों में काव्यमयता, प्राकृतिक सौन्दर्य की सराहना, संक्षिप्त उत्तेजनापूर्ण उद्‌गारों, दण्ड और कष्ट की संक्षिप्त निन्दा आदि भावों की प्रमुखता है। मध्यवर्ती सूरतों में काव्यमयता के साथ-साथ उपदेशात्मकता और गन्धमयता दिखाई देती है। इस युग में उनके जीवन की स्थिति भी बदल चुकी थी और उन्होंने नबी के रूप में लोगों को सावधान तथा सचेत करने का काम आरम्भ कर दिया था। इसलिए इन सूरतों में कवित्व अथवा भाव पक्ष धीरे-धीरे कम होता चला गया है और इसका स्थान सैद्धान्तिक तथ्यों तथा साम्प्रदायिक विश्वासों के प्रचार ने लेना आरम्भ कर दिया है। स्वर्ग और नरक का वर्णन, क़यामत (प्रलय) के दिन का निरूपण, यहूदियों और ईसाइयों से सम्बन्धित अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख इसी तथ्य को पुष्ट करता

है। अन्तिम सूरतों में अर्थात् मदीना में आविर्भूत हुई सूरतों में अनिर्दिष्ट और निरुद्देश्य शब्द नहीं है। वहाँ हज़रत मुहम्मद पैग़म्बर के रूप में अल्लाह सम्बन्धी अपने मान्य सिद्धान्तों और तथ्यों का समर्थन करते हुए तथा इस्लाम-विरोधियों से वाद-विवाद करते-हुए-से प्रतीत होते हैं। जो पैग़म्बर मक्का की सूरतों में परामर्श देते हुए, समझाते हुए और प्रेरणा देते हुए दिखाई देते हैं वही मदीना में कानून बनाते हुए, युद्ध करते हुए, आज्ञाएं देते हुए और कवि की लेखनी के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों एवं साधनों का भी उपयोग करते हुए सामने आते हैं।

मुसलमानों का विश्वास है कि हज़रत मुहम्मद साहब के जीवन-काल में ही कुरान का संकलन हो चुका था और उनके बहुत-से अनुयायियों ने उसे कण्ठस्थ भी कर लिया था। परन्तु वस्तुतः, जैसा कि मुस्लिम इतिहास में प्रतिपादित है, उसे वर्त्तमान रूप देने का श्रेय अबु बक्र तथा जैद बिन थाबित को है। कहा जाता है कि यमामा (ज़मामा) की लड़ाई में वे बहुत-से मुसलमान मारे गये जिन्हें कुरआन कण्ठस्थ था। जो बचे वे इधर-उधर चले गये। कहीं-कहीं आयतों में पाठ-भेद भी सुनने में आने लगा। अतः उमद ने अबू बक्र को, जो हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् खलीफ़ा बना था, सुझाव दिया कि आयतों में अधिक पाठ-भेद होने से पहले ही प्रामाणिक संकलन तैयार करा देना चाहिये। इस पर खलीफ़ा अबू बक्र ने जैद को जो मदीना का रहने वाला था और हज़रत मुहम्मद के अन्सारों में से था, सब स्थानों से कुरआन की आयतें एकत्रित करने का आदेश दिया। जैद ने सब स्थानों पर घूमकर सूरतों, आयतों और कलिमों का संग्रह किया और उन सबका संकलन तैयार किया गया। यह संकलन खलीफ़ा अबू बक्र के पास रहा और उसके दसवर्षीय खिलाफत के काल में उस संकलन को ही प्रमाण माना जाता रहा। परन्तु जैसा कि स्वाभाविक था उसकी नकल करके तैयार की जाने वाली तथा अन्य अनेक प्रतियों में पाठ-भेद दिखाई देने लगा। इस पर हज़फ़ ने चेतावनी दी कि लोगों को पाठ-भेद से रोको ताकि यहूदियों और ईसाइयों के समान वे भी धर्मग्रन्थ (कुरआन) के विषय में मतभेद न रखने लगें। इस चेतावनी के अनुसार खलीफ़ा उस्मान ने एक मिश्रित प्रति तैयार करने के विचार से जैद की नियुक्ति की और उसके साथ तीन अन्य सहायक नियुक्त किये। कुछ लेखकों के अनुसार सहायकों की संख्या बारह थी। रॉडवेल का अनुमान है कि जैद को जैसे-जैसे सामग्री प्राप्त

होती गई वैसे-वैसे वह उसका संकलन करता चला गया। इस प्रकार मक्का और मदीना की, छोटी और बड़ी तथा पहले की और बाद की सूरतें मिला दी गईं। जैद द्वारा तैयार की गई नई प्रति से और नई प्रतियां तैयार करा कर मुस्लिम सेनानायकों के पास भेज दी गईं और साथ ही यह आज्ञा दी गई कि पुरानी सब प्रतियां जला दी जाएं। इस प्रकार कुरआन की प्रामाणिक नई प्रति तैयार हो गई और पुरानी सब प्रतियां जला दी गईं। परन्तु सम्भवतः कुछ न कुछ पाठ-भेद बना ही रहा या बाद में हो गया। सूरतों, आयतों और अक्षरों की संख्या में मतभेद पाया जाता है वह भी इसी कारण ही है। अल्लामा सिमूती ने रब्ने उमर के कथन और बीबी आयशा की रवायत के आधार पर अपनी पुस्तक 'तफ़सीर इत्तिधान' में लिखा है कि यह नहीं कहा जा सकता कि सम्पूर्ण कुरआन कितना था, क्योंकि इसका अधिकांश लुप्त हो गया है।

रॉडवेल आदि यूरोपीय विद्वानों के मतानुसार हज़रत मुहम्मद साहब कुरआन में निर्दिष्ट विचारों के लिए यहूदियों, मूसाइयों और ईसाइयों के ऋणी हैं। उन्होंने कुरआन के काव्यमय अंशों को छोड़कर, जो सर्वथा मौलिक हैं, अन्यत्र यहूदियों और ईसाइयों के सिद्धान्तों, परम्पराओं एवं मान्यताओं का अनुकरण किया है। इन विवेचकों के अनुसार हज़रत मुहम्मद साहब तत्कालीन ईसाई पादरियों और सन्तों से एवं उनके धर्मग्रन्थों तथा धार्मिक सिद्धान्तों से परिचित और प्रभावित थे। उनकी पत्नी खदीजा का चचेरा भाई और उनका घनिष्ठ मित्र वरका बिन नौफ़ल ईसाई था। रॉडवेल ने अनेक यहूदी और ईसाई लेखकों तथा धर्मग्रन्थों का नामोल्लेख किया है जिनसे हज़रत मुहम्मद प्रभावित थे।[१] जॉन डी योहन्नन का कहना है कि कुरआन का बहुत-सा भाग हिब्रू क्रिश्चियन बाइबल से लिया गया है और हज़रत मुहम्मद ने यहूदी तथा ईसाई मतों के अनेक तत्त्वों और सिद्धान्तों को अपनाते हुए उन्हें अपने दृष्टि-कोण में ढाल लिया है।[२] परन्तु कट्टर मुसलमान इस मत से सहमत नहीं हैं कि हज़रत मुहम्मद साहब ने दूसरों का अनुकरण किया। उनके अनुसार कुरआन में संकलित सारा ज्ञान ईश्वरीय है जिसमें से कुछ उन्हें अचेतनावस्था में सीधा ईश्वर से प्राप्त हुआ और कुछ जिब्रील (जिब्राईल) फरिश्ते के माध्यम से प्राप्त हुआ। परन्तु पारसी, यहूदी और ईसाई मतों की धर्मपुस्तकों और कुरआन शरीफ

---

१. रॉडवेल द्वारा अंग्रेज़ी में अनूदित कुरआन की भूमिका, पृ० ८-१३।
२. A Treasury of Asian Literature, pages ३८९-९०।

के तुलनात्मक अध्ययन से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि हज़रत मुहम्मद साहब अपने पूर्ववर्ती पारसी, यहूदी और इसाई पैग़म्बरों के विचारों से प्रभावित थे। कुरआन शरीफ़ का गम्भीर अध्ययन निम्नलिखित बातों की पुष्टि करता है।—

(१) हज़रत मुहम्मद साहब ने 'कुरआन शरीफ़' में स्वयं स्वीकार किया है कि प्रत्येक जाति (समुदाय) के लिए अलग-अलग एक रसूल है।[1]

(२) ईश्वर ने मुहम्मद साहब से पहले भी कितने ही रसूलों को लोगों में भेजा जिनसे कुछ का वृत्तान्त कुरआन में सुनाया गया है और कुछ का नहीं।[2]

(३) हज़रत मुहम्मद साहब ने कुरआन में हज़रत इब्राहीम, हज़रत इस्माइल, हज़रत इसहाक, हज़रत मूसा, हज़रत दाऊद, हज़रत सुलेमान, हज़रत ईसा (जीसस क्राइस्ट) आदि की प्रशंसा की है; उन्हें अपने से पूर्ववर्ती पैग़म्बर स्वीकार किया है; उनकी जीवन-घटनाओं की चर्चा की है और उनके धर्मग्रन्थों तौरेत, इंजील (बाइबल) आदि का नामोल्लेख किया है।

(४) कुरआन में आद, बनी इसराईल, यहूद, समूद, मजूस, बनू नज़ीर आदि जातियों का उल्लेख है।

यूरोपीय विद्वानों की धारणा है कि हज़रत मुहम्मद साहब ने कुरआन में ईबीएनइटों, ऐस्सेनों और साबइयों के सिद्धान्तों से अनेक उदाहरण और विवरण ग्रहण किये हैं। ऐपिफेनियस का कहना है कि कुरआन में आदम और जीसस (ईसा) के सम्बन्ध में वही भाव और शब्द प्रयुक्त किये गये हैं, जो ईबीएनइटों, मोबाइटों तथा बसनाइटों द्वारा प्रयुक्त किये गये थे। शैतान और फरिश्तों की कहानियों, व्रतों, प्रार्थनाओं, पथ्य सम्बन्धी नियमों तथा अनेक सामाजिक प्रतिबन्धों को थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ ईसाई एवं यहूदी धर्मग्रन्थों से लिया गया है। तौरेत तथा बाइबल की अनेक कहानियों को कुरआन में वर्णन किया गया है। कुरआन शरीफ़ में किया गया स्वर्ग और नरक का वर्णन ज़ेन्दावेस्ता के वर्णन से मिलता-जुलता है। इसके अतिरिक्त मुहम्मद साहब ने कुरआन में इस बात का भी स्वयं उल्लेख किया है कि उनके युग के बहुत-से लोग, जिनमें से उनके अपने वंश कुरैश के लोग मुख्य थे जो उनसे भली भाँति परिचित थे

१. कुरआन शरीफ़; सूरत १०, आ० ४८।
२. वही; सूरत ४३, आ० ५; सूरत ४०, आ० ७८।

परन्तु उनकी नुबूबत पर विश्वास नहीं रखते थे, उनके कुरआन को मन-गढ़न्त चीज़ तथा दूसरों की सुनाई हुई कहानियां मानते थे। वे कहते हैं—"जिन लोगों ने कुफ्र किया वे कहते हैं : यह तो बस एक मनगढ़न्त चीज़ है जिसे इस व्यक्ति ने गढ़ लिया है, और दूसरे लोगों ने इस काम में इसकी सहायता की है, तो ये ज़ुल्म और झूठ पर उतर आये हैं और कहते हैं : ये पहले लोगों की कहानियां हैं जिन्हें इसने लिख लिया है और वे इसे प्रातःकाल और सायंकाल सुनाई जाती हैं।"[1] "जब हम एक आयत की जगह दूसरी आयत बदलकर लाते हैं तो वे कहते हैं : तुम तो बस स्वयं पढ़ लेने वाले हो।"[2] "वे कहते हैं कि उसे (मुहम्मद को) तो एक ही आदमी सिखाता-पढ़ाता है। यद्यपि जिसकी ओर वे इशारा करते हैं उसकी भाषा विदेशी है और यह हमारी भाषा स्पष्टतया अरबी है।"[3]

अनेक यूरोपीय विद्वानों ने कुरआन की अनेक आयतों के अर्थ की बाइबल तथा अन्य धर्मग्रन्थों की सूक्तियों एवं उक्तियों से तुलना की है। श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'मुसाबेह अल इसलाम' में कुरआन की कुछ उक्तियों की वेदमन्त्रों से तुलना की है।[4]

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद तथा उन्हीं के-से विचार रखने वाले अन्य उदार मुस्लिम लेखकों के अनुसार कुरआन के उपदेश न केवल मुसलमानों के लिए, वरन् मानव मात्र के लिये हितकर सिद्ध हो सकते हैं। उनके अनुसार कुरआन एक-दूसरे के धर्म में हस्तक्षेप करने की तथा दूसरों के धर्म को बलपूर्वक परिवर्तित करने की अनुमति नहीं देता। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता का कुरआन में विरोध किया गया है। कुरआन कहता है कि संसार के प्रत्येक कोने में प्रकृति के नियम ईश्वर की ओर से एक से ही हैं। उनमें परस्पर कोई विरोध नहीं। इसी लिए ईश्वर ने प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में महापुरुषों और पैग़म्बरों को जन्म दिया है जिन्होंने मानव-कल्याण के लिए ईश्वर के एक ही विश्वव्यापी नियम का उपदेश दिया है। कुरआन एकेश्वरवाद का प्रचारक है और भ्रातृभाव तथा पड़ोसियों, असहायों और अनाथों के साथ

१. सूरत अल फ़ुरक़ान, आयत ५-६।
२. सूरत अन नह्ल, आयत १०१।
३. सूरत अन नह्ल, आयत १०३।
४. पृ० ३७७-४०२।

सद्व्यवहार पर जोर देता है एवं बलात्कार का विरोध करता है। इन तथ्यों की पुष्टि कुरआन के निम्नलिखित कथनों से होती है।

(१) "ईश्वर एक है और वही सब का पूज्य है।"[१] "वह पूज्य ही कृपाशील और दयालु है और सब के संकटों को दूर करने वाला है।"[२] "वह आसमान और जमीन का मालिक है और सभी रहस्यों को जानने वाला है।"[३] "वह सर्वशक्ति सम्पन्न, अनादि और अनन्त, व्यक्त और अव्यक्त, सर्वज्ञ और सर्वान्तिर्यामी तथा सर्वरक्षक हैं।"[४] "वह अत्यन्त उदार और करुणामय है।"[५] उसी की पूजा उचित है।

(२) "तुममें से हर समुदाय के लिए हम ने (अलग-अलग) धार्मिक नियम और मार्ग ठहरा दिये हैं। अगर खुदा चाहता तो तुम सब का एक ही सम्प्रदाय बना देता परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। इसलिए कि जो कुछ तुम्हें दिया गया है उसी में तुम्हारी परीक्षा करे। बस नेकी की राह में एक-दूसरे से आगे बढ़ निकलने का यत्न करो।"[६]

(३) "जो लोग अपने धर्म के टुकड़े-टुकड़े कर अलग-अलग गिरोहों (समुदायों) में बंट गए, उनसे तुम्हें कोई वास्ता नहीं। उनका खुदा उन्हें बतला देगा।"[७]

(४) "निस्सन्देह हम ने दुनिया की हर क़ौम में एक पैग़म्बर भेजा कि ईश्वर की उपासना करो और दुष्ट वासनाओं अर्थात् पाशविक वृत्तियों के भुलावे में न आओ।"[८]

(५) "ऐ पैग़म्बर! हम ने तुम से पहले कितने ही पैग़म्बर भेजे। उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनका वर्णन तुमने किया है, और कुछ ऐसे हैं जिनका

---

१. कुरआन शरीफ़, सूरत ३७, आयत ४।
२. वही, १/१-३; २/१६३; ६/१२-१८; १३/६ आदि।
३. वही, ७/१५८; १०/५५-५६; १३/६; १६/७७ आदि।
४. वही, ५४/५५ ; ५७/१-६ ; ५६/२२-२४ आदि।
५. वही, १/२ ; २/१०५ ; २/१४३ ; २/२०७ ; ६/१४७ ; ११/६० आदि।
६. वही, ५/५२।
७. वही, ६/१६०।
८. वही, १६/३८।

वर्णन नहीं किया।"[1]

(६) "अनाथों, पड़ोसियों और मुसाफ़िरों के साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिये ;" "अपना धन अनाथों, असहायों और अतिथियों पर खर्च करना चाहिये ;" "अनाथों और असहायों से न्याय करना चाहिये और उनके धन की रक्षा करनी चाहिये ;" "भूखों को और अनाथों को खाना खिलाना चाहिये चाहे वे सम्बन्धी हों और चाहे फ़क़ीर, यह बड़ा नेकी का काम है।"[2]

सैद्धान्तिक रूप से ये उपदेश वास्तव में बहुत अच्छे हैं और मानव मात्र के लिए हितकर हैं। परन्तु हज़रत मुहम्मद ने अपने जीवन काल में जिहाद (धर्म युद्ध) का प्रचार किया; काफिरों, कुरैशों, यहूदियों तथा अन्य जाति वालों के साथ बदर, उहद, खंदक, बनी करीज़ा, हदीबिया, बनी मुस्तलक, खैबर, तायफ़ आदि स्थानों पर अनेक युद्ध किये ; मक्का के मन्दिर की मूर्तियों को तोड़ा और वहाँ के निवासियों को जबरदस्ती मुसलमान बनाया।

जिहाद के लिए अपने अनुयायियों को प्रोत्साहित करते हुए उन्होंने कुरआन में कहा—

(१) "सो ऐ मुहम्मद ! तू खुदा की राह में लड़ाई कर। तू ज़िम्मेदार नहीं और तू ईमानदारों (मुसलमानों) को लड़ाई पर उभार।"[3]

(२) "ऐ नबी ! तू मुसलमानों को लड़ाई पर उभार।"[4]

(३) "अहले किताब में से जो लोग अल्लाह और आखिरी दिन पर ईमान नहीं लाते और अल्लाह और उसके रसूल की हराम की हुई चीज़ों को हराम नहीं जानते और दीनेहक़ (इस्लाम) क़बूल नहीं करते, मुसलमानो ! तुम ऐसों से मुकाबला करो। यहाँ तक कि वे अपने हाथों से जज़िया दें और ज़लील (तुच्छ) होकर रहें।"[5]

(४) "ऐ नबी ! काफ़िरों से लड़ाई कर और उन पर सख्ती दिखला और

१. वही, ४०/७८।
२. वही, क्रमशः ४/३६, २/२२० ; २/२१५, २/१७७ ; ४/१२७, ६/१५२, १७/३४ ; ८६/१७-१८, ६०/१३-१८।
३. कुरआन शरीफ़, सूरत ४, आयत ८३।
४. वही, ८/६४।
५. वही, ६/२८।

उनका ठिकाना जहन्नुम है जो बुरी जगह है ।"[१]

(५) "फिर जब हुरमत के महीने गुज़र जाएं तो क़ाफ़िरों को जहाँ पाओ, क़त्ल करो और पकड़ो और घेरो और हर घात की जगह में उनके लिए बैठो। फिर अगर वे तोबा करें और नमाज़ पढ़ें और ज़कात (खैरात) दें तो उनकी राह छोड़ दो, वे जहां चाहें फिरें ।"[२]

(६) "मोमिनो ! अपने नज़दीक के क़ाफ़िरों से लड़ने जाओ और ज़रूरी है कि वे तुम में सख्ती देखें ।"[३]

(७) "तू कह लूट का माल अल्लाह का और रसूल का है ।"[४]

(८) "और जान लो कि जो लूट का माल लाओ, उसका पाँचवां भाग अल्लाह और रसूल और उसके सम्बन्धियों, अनाथों और मोहताजों और मुसाफिरों के लिए है ।"[५]

(९) "जो लूट का माल तुम लाए हो, हलाल, पाक है। तुम खाओ और अल्लाह से डरो ।"[६]

(१०) "शौहर वाली औरतों का निकाह में लाना भी हराम है, मगर जो तुम्हारे क़ब्ज़े में आ जाएँ उनसे निकाह कर सकते हो ।"[७]

इस प्रकार की उक्तियाँ और हज़रत मुहम्मद साहब के अनेक युद्ध[८] मौलाना अबुलकलाम आज़ाद आदि उदारतावादियों के वचनों को असंगत सिद्ध करते हैं। हज़रत मुहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायियों ने इस्लाम के प्रचार और प्रसार के लिए फारस, सीरिया, यरूशलम, मिश्र, उत्तरी अफ्रीका, साइप्रस, कुस्तुनतुनिया, तुर्किस्तान, समरकंद, स्पेन, क्रीट, रोम, सिसली,

१. वही, ८/७२ ।
२. वही, ९/४ ।
३. वही, ९/१२२ ।
४. वही, ८/१ ।
५. वही, ८/४० ।
६. वही, ८/६८ ।
७. वही, ४/२३ ।
८. इस्लामी धर्मग्रन्थों के अनुसार हज़रत मुहम्मद साहब ने ८१ युद्ध किये, जिनमें से २७ युद्ध तो बड़े-बड़े और भयानक थे ।

थ्रेस, बलगारिया, भारतवर्ष ग्रादि में जो ग्रत्याचार किये उनसे इतिहास स्वयं लज्जित है। ईसाइयों की धर्मान्धता से मुसलमानों की धर्मान्धता किसी प्रकार भी कम नहीं रही। कहा जा सकता है कि इस्लाम का भ्रातृभाव केवल मुसलमानों तक ही सीमित रहा है। और भारतीय सुलतानों का इतिहास तो सिद्ध करता है कि उनमें ग्रापस में भी भ्रातृभाव नहीं था।

इस्लाम के सिद्धान्त

'कुरग्रान शरीफ़' के ग्रनुसार इस्लाम के मूल सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(१) कलिमाए तौहीद (ईश्वर वचन)—'ला इलाहा इल्लिल्हु मुहम्मदुर्-रसूलल्लाह्' ग्रर्थात् 'ग्रल्लाह् के ग्रतिरिक्त ग्रौर कोई उपासना के योग्य नहीं है ग्रौर मुहम्मद ग्रल्लाह् का रसूल है।'

(२) नमाज़ (प्रार्थना-उपासना)। नमाज़ दिन में पाँच बार पढ़ी जाती है ग्रौर सिजदा किया जाता है। उससे पहले विधिपूर्वक मुँह-हाथ धोये जाते हैं जिसे वुज़ू करना कहते हैं।[1] नमाज़ काबा (पश्चिम) की ग्रोर मुँह करके पढ़ी जाती है।

(३) ज़कात (दान-पुण्य)।

(४) रोज़ा (व्रत)। रमज़ान के महीने में तीस दिन के लिए व्रत रखा जाता है।[2]

(५) हज (मक्का की यात्रा)।

इन मूल सिद्धान्तों के ग्रतिरिक्त कुरग्रान निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है —

(१) ईश्वर एक है ग्रौर सब का स्वामी है। वह दयालु ग्राकाश पर रहता है।[3]

---

१. कहा जाता है कि इस्लाम के प्रचार से पहले ईरान का मैनिकियन (Manichian) नामक सम्प्रदाय दिन में पाँच बार पूजा-उपासना करता था। इस्लाम ने दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ने की पद्धति को ग्रौर सिजदा करने की विधि को मैनिकियनों से ग्रहण किया।

२. मैनिकियन सम्प्रदाय वाले भी वर्ष में तीस दिन रोज़ा रखते थे।

३. कुरग्रान, सू० २, ग्रा० २८; सू० ७, ग्रा० ५३, सू० २०, ग्रा० ४ ग्रादि।

(२) कुरम्रान में जब्राईल, मैकाईल, इसराईल, इज्राईल, करामन, कातिबीन, मुन्किर, नकीर म्रादि म्रनेक फरिश्तों का उल्लेख है ।

(३) जिन म्रौर शतान बुराई म्रौर भ्रान्ति फैलाने वाली शक्तियां हैं । शैतान के सम्बन्ध में कुरम्रान में लगभग वही विचार व्यक्त किये गये हैं जो यहूदियों के धर्मग्रन्थों में हैं ।

(४) कुरान म्रल्लाह की किताब है म्रौर हज़रत मुहम्मद म्रल्लाह का रसूल म्रथवा पैग़म्बर है ।

(५) यहूदियों म्रौर ईसाइयों के समान कुरआन क़यामत (प्रलय) में विश्वास रखता है म्रौर उन्हीं के समान उसका वर्णन भी करता है । प्रलय के दिन मुर्दे जीवित हो उठेंगे । ईश्वर एक सिंहासन पर बैठकर मशहर के मैदान में सब के कर्मों का हिसाब लेंगे म्रौर उन्हें स्वर्ग म्रथवा नरक में भेजेंगे ।

(६) कुरम्रान के म्रनुसार जिहाद में सम्मिलित होना, नमाज़ पढ़ना, रोजा रखना, मस्जिद बनाना, हज करना, रसूल म्रौर फरिश्तों म्रादि में विश्वास रखना आदि मुक्ति के साधन हैं ।

इस्लाम भी प्रचार-प्रधान मत है म्रौर यहूदी मत तथा ईसाई मत के समान इसमें भी गम्भीर दार्शनिक विषयों का विवेचन नहीं ।

म्रल-हदीस

'कुरम्रान शरीफ़' के पश्चात् मुसलमानों की प्रमुख धार्मिक पुस्तक 'म्रल-हदीस' है । यद्यपि 'म्रल-हदीस' को वह स्थान प्राप्त नहीं है जो कि 'कुरम्रान शरीफ़' को प्राप्त है तथापि इस्लाम की मान्यताम्रों, परम्पराम्रों म्रौर रीति-रिवाजों के स्वरूप एवं प्रामाणिकता के लिए हदीस को म्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझा जाता है, क्योंकि इनमें विभिन्न परम्पराम्रों, रीति-रिवाजों तथा सन्दिग्ध धार्मिक जटिलताम्रों के सम्बन्ध में हज़रत मुहम्मद के निजी विचार एवं सन्देश हैं । मौलाना फ़ज़लुलकरीम का कहना है कि "मानवीय जीवन की पूर्णता के लिए धार्मिक जीवन के सम्पादन में कुरआन के साथ-साथ हज़रत मुहम्मद साहब की हदीस म्रथवा परम्पराम्रों का भी म्रत्यधिक महत्त्व है । निस्सन्देह मानव के दैनिक जीवन में बहुत-सी बातों में हदीस-रहित कुरम्रान म्रस्पष्ट म्रथवा दुर्बोध

है"[1] और "प्रत्येक मुसलमान के लिए परम आवश्यक है कि वह अपने जीवन के पथ-प्रदर्शन के लिए एक-एक प्रति कुरआन और हदीस की अपने पास रखे"।[2]

इसलाम के अनुसार 'हदीस' का अर्थ है "हजरत मुहम्मद साहब के कार्य-कलाप और वचनों का संग्रह जो कुरआन में अनुक्त विषयों के लिए प्रामाणिक है।" हदीस के तीन प्रकार हैं—(१) हजरत मुहम्मद के वचन, (२) हज़रत मुहम्मद के कार्य और आचरण, (३) वे कार्य जिन्हें उन्होंने स्वीकार किया अथवा जिनके सम्बन्ध में उन्होंने अपना कोई मत व्यक्त न किया। इन तीनों को क्रमश: हदीसे कौली, हदीसे फ़ेली और हदीसे तक़रीरी कहकर पुकारा जाता है। जहाँ तक उनके वचनों तथा आचरण का सम्बन्ध है, हदीस में उन व्यक्तियों को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया गया है जिनके सम्मुख हज़रत मुहम्मद साहब ने किसी समस्या के सम्बन्ध में अपना मत प्रस्तुत किया अथवा कोई आचरण किया, अथवा जिन्होंने तत्कालीन प्रामाणिक व्यक्तियों से सुना; अथवा जिन्होंने तत्कालीन व्यक्तियों से सम्बन्धित किन्हीं अन्य व्यक्तियों से सुना जिन्होंने हदीसों को सुन रखा था।

मुसलमान धर्म-विवेचकों के कथनानुसार हदीसों अथवा हज़रत मुहम्मद साहब के वचनों, कार्यों, आदेशों और परम्पराओं के अनेक संग्रह हैं जिनमें से निम्नलिखित छ: अधिक प्रामाणिक हैं:—

(१) बुखारी कृत 'सहीहे-बुखारी', (२) मुसलिम कृत 'सहीहे-मुसलिम,' (३) अबू दाऊद कृत 'सुनन', (४) तिरमिज़ी कृत 'जामि अतिरमिज़ी, (५) अबू अब्दुर् रहमान कृत 'अल-मिज़तना' और (६) इब्नि माजह कृत 'सुनन'। कुछ विद्वान् इब्नि माहज कृत 'सुनन' के स्थान पर इमाम मालिक कृत 'अल्-मुअत्ता' को अधिक प्रामाणिक मानते हैं। इनके अतिरिक्त अल-दरीमी, बैहक़ी, इमाम

1—The traditions of the Holy Prophet have got paramount importance side by side with the Quran in the formation of a religious life of a human being for the attainment of perfection. Indeed the Quran minus Hadis remains unintelligible in many cases in the work-a-day life of man. (Al-Hadis, Book I, page 3.)

2—A Muslim, therefore, stands in absolute need for a Copy of the Quran and a copy of the Hadis for the guidance of his life. (Al-Hadis, Book I, page 2).

अहमद, वली उद्दीन अबु अब्दुल्ला महमूद आदि कृत अन्य हदीसें अथवा संग्रह भी हैं, परन्तु उन्हें अधिक प्रामाणिक नहीं माना जाता। बुखारी और मुस्लिम के हदीस-संग्रहों को सबसे अधिक प्रामाणिकता दी जाती है। परन्तु इनमें संकलित हदीसों की संख्या एक-सी नहीं है। कहा जाता है कि जब हदीसों के संकलन की आवश्यकता प्रतीत हुई और विद्वानों ने हदीसों का संग्रह करना आरम्भ किया तब उनके सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह उपस्थित हुई कि हज़रत मुहम्मद के नाम से उनके लाखों वचन, कार्य, सिद्धान्त, रिवायतें, मान्यताएं और परम्पराएं इसलामी जगत् में प्रचलित हो चुकी थीं। यह जानना अत्यन्त कठिन था कि उनमें से कौन-सी ठीक हैं और कौन-सी ग़लत और बनावटी। उन्होंने ठीक हदीसों को चुनने के लिए और उनकी सत्यता की परीक्षा करने के लिए कुछ विशेष नियम बनाये। परन्तु फिर भी सम्भव है कि इतने बड़े कार्य में कई बनावटी और ग़लत बातें भी सम्मिलित हो गई हों। बुखारी ने प्रचलित छः लाख रिवायतों में से लगभग नौ हज़ार को चुना और शेष को छोड़ दिया। उन नौ हज़ार में से भी यदि पुनरुक्तियों को हटा दिया जाये तो 'सहीहे बुखारी' में संकलित हदीसों की संख्या लगभग तीन हज़ार रह जाती है। मुस्लिम ने तीन लाख प्रचलित हदीसों में से ६२०० का संकलन किया। इसी प्रकार अबू दाऊद ने लगभग पाँच लाख हदीसों को इकट्ठा किया और उनमें से ४८०० का अपनी पुस्तक में संकलन किया।

सिख मत

सिख मत वस्तुतः हिन्दू धर्म की ही एक अवान्तर शाखा है, जिसका प्रवर्तन गुरु नानक देव ने तत्कालीन कुरीतियों के निवारण के लिये किया।

गुरु नानक देव का जन्म सन् १४६९ ई० में तलवंडी नामक गाँव में, जिसे आजकल ननकाना साहब कहते हैं, हुआ था। उनके पिता का नाम कालूराम और माता का नाम तृप्ता था। कालूराम व्यवहार कुशल पटवारी थे और बेटे को खूब पढ़ाना-लिखाना चाहते थे, परन्तु बालक नानक की रुचि पढ़ने-लिखने में नहीं थी। उसे आरम्भ से ही ईश्वर-भक्ति की लगन थी। पिता ने उन्हें व्यापार में लगाना चाहा, परन्तु उसमें असफलता मिली। उन्होंने सौदा खरीदने के लिए दिये गये रुपयों से रोटियां बनवाकर साधुओं को खिला दीं। उनके बहनोई ने सुलतानपुर लोधी में उन्हें नवाब के भण्डार में नौकर रखवा दिया, परन्तु उन्होंने भण्डार से गरीबों को मुफ्त अनाज बांटना आरम्भ कर दिया और इसलिए उन्हें वहाँ से हटा दिया गया। पिता ने उनकी वैराग्यमयी प्रवृत्ति को देखकर उनका विवाह कर दिया। उनकी पत्नी का नाम सुलक्षणा था। श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द नामक दो बेटे भी उनके यहाँ उत्पन्न हुए। परन्तु वे अधिक देर तक गृहस्थ के बन्धन में न रह सके और संन्यासी बनकर घर से निकल गये तथा देश-विदेश में भ्रमण करते रहे। पच्चीस वर्ष तक भ्रमण करने तथा अपने विचारों का प्रचार करने के पश्चात् वे कर्तारपुर में (जो अब पाकिस्तान में है) आकर रहने लगे। वहीं २२ अक्तूबर, सन् १५३८ ई० को उनका स्वर्गवास हो गया।

सिख मत की सबसे पवित्र धार्मिक पुस्तक आदि ग्रन्थ अथवा 'गुरु ग्रन्थ साहिब' है।

गुरु ग्रन्थ साहिब

'आदि ग्रन्थ' अथवा 'गुरु ग्रन्थ साहिब' सिखों की अत्यन्त पवित्र एवं मान्य धार्मिक पुस्तक है। गुरु गोविन्द सिंह ने खालसा पन्थ की स्थापना करके 'गुरु ग्रन्थ साहिब' को ही धार्मिक गुरु का स्थान देकर उसके महत्त्व को और

भी अधिक बढ़ा दिया। तब से सिख इसे गुरु मानते हैं और इसके कलेवर को गुरु का शरीर समझते हैं। वे अपने सभी धार्मिक कृत्यों तथा जन्म, मरण, विवाह आदि संस्कारों को इसीसे आरम्भ करते हैं और इसका अखण्ड पाठ रखवाते हैं।

'गुरु ग्रन्थ साहिब' का सम्पादन संवत् १६६१ विक्रमी तदनुसार सन् १६०४ ई० में पाँचवें गुरु अर्जुन देव ने किया था और इसमें संगृहीत सर्वाधिक वाणी भी उन्हीं की है। इसमें उन्होंने अपने अतिरिक्त अपने पूर्ववर्ती चारों गुरुओं तथा अन्य प्रसिद्ध सन्तों एवं भक्तों, विशेषकर निर्गुणवादियों, की वाणी का भी संग्रह किया। बाद में गुरु तेग़बहादुर के कुछ सबद (शब्द) और सलोक (श्लोक) तथा गुरु गोविन्द सिंह का एक सलोक भी शामिल किया गया। इस प्रकार 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में सैंतीस महापुरुषों की वाणी संगृहीत है जिनके नाम हैं—(१) गुरु नानक देव, (२) गुरु अंगद, (३) गुरु अमरदास, (४) गुरु रामदास, (५) गुरु अर्जुन देव, (६) गुरु तेग़बहादुर (७) गुरु गोविन्द सिंह, (८) महात्मा कबीर, (९) नाम देव, (१०) गुरु रविदास, (११) फ़रीद, (१२) त्रिलोचन, (१३) वेणी, (१४) धन्ना (१५) जैदेव, (१६) भीखन, (१७) सैण (१८) पीपा, (१९) सधना, (२०) रामानन्द, (२१) परमानंद (२२) सूरदास, (२३) सुंदर (२४) मरदाना, (२५) सत्ता, (२६) राय बलवंड, (२७) कल्ह सहार, (२८) जाल्य, (२९) कीरत। (३०) सल्ल, (३१) भल्ल, (३२) नल्ल, (३३) भिक्खा, (३४) गयंद, (३५) बल्ल, (३६) हरिबंस और (३७) मथुरा।

'गुरु ग्रन्थ साहिब' गीतात्मक पदों, दोहों (सलोकों) आदि का संग्रह है। अतः इसे राग-रागिनियों के आधार पर इकतीस भागों में विभक्त किया गया है। इन मुख्य भेदों के पश्चात् 'सवैये स्रीमुख वाक्य', 'सलोक, वारां ते वधीक' आदि कुछ अन्य परिच्छेद भी जोड़े गये हैं।

ग्रन्थ के अन्त में इसमें प्रयुक्त राग-रागिनियों की परिचयात्मक सूची भी दी गई है। भारतीय संगीत की दृष्टि से यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। समस्त ग्रन्थ में कुल ५८९४ पद (सवद, सलोक आदि) हैं जिनमें से ४९५६ पद गुरुओं द्वारा लिखे गये हैं और शेष ९३८ अन्य सन्तों, भक्तों और भाटों की रचनाएं हैं। गुरुओं द्वारा रचित ४९५६ पदों में से २३१२ पद (सबद, सलोक, छंद, पाउड़ी आदि) अकेले गुरू अर्जुनदेव द्वारा रचित हैं। गुरु नानक देव द्वारा रचित पदों की संख्या लगभग ५०० है। अन्य सन्तों और भक्तों की वाणियों में से सबसे अधिक संख्या में पद (सबद, सलोक और दोहे) महात्मा कबीर के

हैं। उनके पदों की संख्या ४७० है। शेख फ़रीद के पदों की संख्या १३४ है। नामदेव के पद ६४ हैं और रविदास के ४०। कई सन्तों और भक्तों का केवल एक-एक पद ही संगृहीत किया गया है।

'गुरु ग्रन्थ साहिब' की भाषा मुख्य रूप से ब्रजभाषा है, जिसमें पंजाबी, लहदी, फारसी, सिन्धी, मुलतानी, राजस्थानी आदि भाषाओं और बोलियों के भी शब्द मिले हुए हैं। संस्कृत और अपभ्रंश के विकृत रूप भी मिश्रित हैं जिन्हें 'सहसकृती' कहकर पुकारा गया है। इस मिली-जुली भाषा को तत्कालीन सन्तभाषा का सुन्दर नमूना कहा जा सकता है, जिसका प्रयोग कबीर, नानक, रविदास आदि सन्त अपने धार्मिक विचारों का प्रचार करने के लिए करते थे। श्री प्यारा सिंह पद्म ने गुरु अर्जुनदेव की भाषा पर विचार करते हुए 'गुरु अर्जुनदेव की वाणी' नामक पुस्तक में लिखा है कि गुरु अर्जुन साहिब की सरल भाषा प्रमाणिक सन्त भाषा है और इसे हम उस समय की संतभाषा का श्रेष्ठतम नमूना कह सकते हैं। इसमें पंजाबी की पुट तो है ही परन्तु यह हिन्दी से बिल्कुल अभिन्न हैं।[1] परन्तु गुरुमुखी लिपि में लिखने के कारण मूल भाषा में अवश्य थोड़ा-बहुत अन्तर पड़ गया होगा। इसमें प्रयुक्त किये गये संस्कृत शब्दों के रूप से यह बात स्पष्ट हो जाती है। 'कबीर बीजक' तथा 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में संगृहीत कबीर साहिब की रचनाओं में पाये जानेवाले थोड़े-बहुत अन्तर का भी यही कारण है। श्री प्यारा सिंह पद्म का यह कहना ठीक है कि यदि गुरु अर्जुनदेव उस समय अपनी वाणी (ग्रन्थ साहिब) को देवनागरी में स्वयं ही लिखते तो शायद इसका रूप कुछ और होता।[2]

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, गुरु नानक देव ने सिख मत का प्रवर्तन हिन्दू धर्म की कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों के निराकरण के लिए किया था। वे स्वयं हिन्दू थे और उनके अनुयायी गुरु भी कट्टर हिन्दू थे। उन्होंने हिन्दू धर्म के लिए और हिन्दू सिद्धान्तों की रक्षा के लिए अपना बलिदान तक दिया। गुरु गोविन्दसिंह ने यही बात स्पष्ट शब्दों में कहते हुए 'पंथ प्रकाश' में लिखा है—

"पालन हेत सनातन नैतै, वैदिकधर्म रखन के हेते।
आप प्रभु गुरु नानक रूपं, प्रगट भए जग में सुख भूपं॥"

---

१. गुरु अर्जुनदेव की वाणी, भूमिका, पृ० २४।

२. देखिये 'गुर अर्जुन देव की वाणी,' भूमिका, पृ० २६, फुटनोट।

अंग्रेजों ने "फूट डालो और राज्य करो" नीति को अपना कर हिन्दुओं-हिन्दुओं में और हिन्दुओं-मुसलमानों में फूट डाली। सिक्खों को हिन्दुओं से अलग गिनना भी उसी फूट नीति का परिणाम है और भोले-भाले हिन्दू और सिख उसे समझ नहीं पाये। अंग्रेजों की उसी नीति को सामने रखते हुए मैकालिफ ने अपनी पुस्तक 'दि सिख रिलीजन' में गुरू-मत (सिख मत) को हिन्दू धर्म और इस्लाम से अलग तीसरा मत माना है। फेडरिक पिंकाट ने तो 'दि डिक्शनरी आव इस्लाम' में गुरू नानक को इस्लाम धर्मावलम्बी बता दिया है। डाक्टर ट्रम्प ने 'ग्रन्थ साहिब' के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में ऐसे विचारों का खण्डन किया है और लिखा है कि गुरू नानक एक पूर्ण हिन्दू विचारक थे।[1] उन्होंने यह भी लिखा है कि उन पर इस्लाम का जो प्रभाव था वह इस्लाम-जन्य नहीं था, बल्कि सूफ़ी-जन्य था, जो कि हिन्दुओं के ही सर्वात्मवाद का एक रूप है।

'गुरु ग्रन्थ साहिब' में एक तीसरा पन्थ अथवा हिन्दू धर्म से अलग धर्म चलाने की कोई बात नहीं लिखी है। वहाँ तो मनुष्य को अपने जीवन को सच्चा और पवित्र बनाने का और सत्य स्वरूप परमात्मा को उसकी भक्ति द्वारा प्राप्त करने का उपदेश मात्र है। 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में संगृहीत गुरुओं की वाणी के अनुसार मानव कल्याण के लिए निम्नलिखित उपदेश दिया गया है—

(१) एक ईश्वर ही सत्य है। उसी में निश्चय और विश्वास रखो। गुरु नानक कहते हैं—"एक कहिये नानका, दूजा काहे को।"

(२) सदा ईश्वर का स्मरण करो और उसके नाम का जप करो। (ईश्वर के लिए गुरु वाणी में ओंकार, ओम्, राम, हरि, प्रभु आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। गुरु ग्रन्थ साहिब का आरम्भ ही 'ओ३म्' शब्द से किया गया है और लिखा गया है—"१ ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि।" स्वामी अमृतानन्द ने लिखा है कि सम्पूर्ण गुरु ग्रन्थ साहिब में राम नाम (राम शब्द) लगभग चौबीस सहस्र बार प्रयुक्त किया गया है।)

(३) ईश्वर-स्मरण में गुरु की सहायता आवश्यक है। इसलिए गुरु का सम्मान और वन्दन करो। गुरु नानक कहते हैं—"बिनु सतगुरु किनै न पायो।"

(४) ईश्वर व्यापक, अपरम्पार और सर्वव्यापक है। वह अत्यन्त दयालु है। उसकी दयालुता में विश्वास रखो।

---

१. दि आदि ग्रन्थ, इण्ट्रोडक्शन, पृ० ९८-११८।

(५) ईश्वर-प्राप्ति में काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार पांच महाशत्रु सबसे बड़ी बाधा हैं। इनको त्याग दो। अहम्भाव का त्याग ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन है।

(६) गुरुओं ने शुद्ध और शुभ आचरण पर बड़ा ज़ोर दिया है। शुभ कार्यों के बिना पति-परमात्मा से मिलना असम्भव है।

(७) गुरु अर्जुन देव ने "किरत कमाई करने और बांट कर खाने" पर बहुत ज़ोर दिया है। वे कहते हैं—उद्द्म करें दिआ जीउ तू कमांवदिआं सुख भुंच।" ये शब्द ईशावास्योपनिषद् के "मा गृध: कस्य स्विद् धनम्" का स्मरण कराते हैं।

(८) उन्होंने जात-पात और साम्प्रदायिकता का विरोध किया है। उनके अनुसार ईश्वर चिन्तन और ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान, अर्थात् सभी समान हैं। गुरु अर्जुन देव कहते हैं—कहु नानक जिनि हुक्म पछाता, प्रभ साहिब का तिनि भेद जाता।" जहाँ तक आध्यात्मिक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है सिख गुरुओं की वाणी में द्वैतवाद सम्बन्धी पद भी हैं और अद्वैतवाद सम्बन्धी पद भी। जहां एक ओर "तू पिउ गुनवन्ता हउ, अउगुण आरा"[1], "सरणि परे की राखहु सरमा"[2], "हारि परियो सुआमी के दुआरे दीजै बुद्धि विवेका"[3], "नानक हारि परियो सरनागति, अभै दानु प्रभु दीजै"[4], आदि द्वैतपरक पद हैं वहाँ दूसरी ओर "जे दीसै सो तेरा रूप"[5], "नानक आपि आपै रमइआ", "जब इनु किय करि मानै भेदा, तब ते दुख दंड अरु खेदा"[6] आदि अद्वैतपरक पद भी हैं। इसी प्रकार संसार के विषय में भी 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में दोनों प्रकार की उक्तियां हैं। वेदान्त के अनुसार संसार मिथ्या है, परन्तु न्यायदर्शन ऐसा नहीं मानता। 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में दोनों मतों का समर्थन करने वाली उक्तियां हैं। जैसे—

---

१. गुरुग्रन्थ साहिब, राग बडहंस, म० ४
२. वही, राग आसा, म० ५।
३. वही, राग सौरठ, म० ५।
४. वही, राग जैतश्री, म० ९।
५. वही, राग तिलंग, म० १।
६. वही, राग औड़ी अष्टपदी, म० ५।

(क) जगत् का मिथ्यात्व

(१) जगु सुपना बाजी बनी, खिन महि खेलु खिलाई ।[१]

(२) मृग त्रिसना जिउ जग रचना यह देखहु रिदै बिचारि ।[२]

(३) यह जगु धुए का पहार । तै साचा मानिआ किह बिचार ॥[३]

(ख) जगत् का सत्यत्व

(१) सच्चे तेरे खंड सच्चे ब्रह्मन्ड ।[४]

(२) आपि सति धारी सभु सति, तिस प्रभु ते सगली उतपति ।[५]

कर्म तथा जन्म-मरण के सम्बन्ध में गुरुओं को हिन्दू-दर्शन का कर्म-सिद्धान्त स्वीकृत है । परन्तु साथ ही वे सन्तों और भक्तों की परम्परा को स्वीकार करते हुए इस बात को भी मानते हैं कि ईश्वर की कृपा होने पर कर्म बन्धन की यन्त्रणा नहीं रहती । गुरु अर्जुनदेव कहते हैं—

जब होवत प्रभ केवल धनी । तब बन्ध मुकति कहु किस कउगनी ।
जब अविगत अगोचर प्रभ एका । तब चित्रगुप्त किसु पूछत लेखा ॥[६]

---

१. वही, श्री राग, म० १ ।

२. वही, राग देवगंधार, म० ९ ।

३. वही, राग बसन्त, म० ९ ।

४. वही, राग आ० वा०, म० १ ।

५. वही, सु० अ०, म० ५ ।

६. वही, सुखमनी ।